محرم نمبر ۱۴۳۳ھ

نومبر۔دسمبر ۲۰۱۱ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰہُ تَبارَکَ وَتَعالیٰ قَدْ جاءَ کُمْ مِنَ اللّٰہِ نُورٌ وَ کِتابٌ مُبِینٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب





نورہدایت فاؤنڈیشن، حسینیۂ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ۔۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2011-13 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

SHUA-E-AMAL
Lucknow

शुआ-ए-अमल
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

NOV. - DEC. 2011





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

बिस्मेही तआला

मुहर्रम नम्बर
1433 हि०

वर्ष 8 | अंक 5–6

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन की

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

नवम्बर–दिसम्बर 2011

शुआ–ए–अमल

"लखनऊ"

न्यास संस्थापन

15 जमादिलऊला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलऊला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

मिलने का पता

नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ – 3

Phone No: 0522-2252230 — 0522-4062731 Mobile No: 09335276180 — 09335996808

सै. कल्बे जवाद नक़वी प्रिन्टर, पब्लिशर और प्रोपराइटर ने मासिक शुआ-ए-अमल (उर्दू, हिन्दी) निज़ामी आफ़सेट प्रेस विक्टोरिया स्ट्रीट लखनऊ से छपवाकर आफ़िस नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन इमामबाड़ा गुफ़रानमआब मौलाना कल्बे हुसैन रोड लखनऊ-3 से प्रकाशित किया। सम्पादक : सै० मुस्तफ़ा हुसैन नक़वी 'असीफ़ जाएसी'।

Per copy 20/- Annual 200/-

सम्पादन समिति

▼▼▼

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526

▼▼▼

Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10

●●●

WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.com
www.al-ijtihaad.com

●●●

E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

वार्षिक अंशदान

1- यूरोप, अमरीका, कनाडाः
80 अमरीकी डालर

2- ख़लीजी मुमालिकः
60 अमरीकी डालर

3- एशिया, पाकिस्तानः
40 अमरीकी डालर

4- पाकिस्तान ज़मीनी डाकः
20 अमरीकी डालर

लाइफ़ मेम्बरशिपः 4000/-

विषय सूची

नवम्बर-दिसम्बर 2011ई०
मुहर्रम नम्बर 1433हि०

याद और यादगार

(स्मरण तथा स्मृति)

आयतुल्लाहिलउज़मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह

अनुवादकः सय्यद जाफ़र असर नक़वी जायसी

क़ुरआन मजीद की एक आयत (वाक्य) है जिसमें अल्लाह मुहम्मद साहब से सम्बोधित होकर कहता है कि (ऐ मुहम्मद[स०]) "याद दिलाते रहिए क्योंकि इसमें ईमान वालों का लाभ है।"

मुहम्मद साहब अल्लाह की ओर से कई कर्त्तव्यों के उत्तराधिकारी थे। उन्हीं में से एक कर्तव्य है 'तबलीग़' जिसका अर्थ है 'पहुँचाना' जैसा कि एक आयत में आदेश हुआ कि "पहुँचा दीजिए उसे जो आपके अल्लाह की ओर से उतारा गया है।" वरन् विशेष रूप से एक रसूल की हैसियत से एक पैग़म्बर (पहुँचाने वाला) का कर्तव्य यही बताया गया है अर्थात् "रसूल का काम ही बस पहुँचाना होता है।"

दूसरा कर्त्तव्य है समाचार देना, जैसे क़ुरआन की एक आयत है कि "मेरे बन्दों (दास) को समाचार दीजिए कि "मैं महान प्रदानकर्ता, दया निधान हूँ।" अनेकों विद्वानों के निकट 'नबी' शब्द का अर्थ है 'समाचार' इसी प्रकार आपके अनेकों नाम हैं जैसे शुभ समाचार देने वाला, डराने वाला। इसके अतिरिक्त एक कर्तव्य 'शिक्षा' है। एक आयत का अर्थ है किः- "वह उन्हें पुस्तक तथा हिकमत की शिक्षा देता है।"

परन्तु जो आयत मेरे विषय का आधार है उसमें कर्तव्य विभिन्न प्रकार के हैं। उदाहरणार्थः- 'पहुँचाना' इस में सम्भव है वह बात सर्वप्रथम पहुँचाई जा रही हो। 'समाचार' देना अति सम्भव है कि इसके पूर्व वह समाचार न दिया गया हो। प्रकट (अभिव्यक्ति) प्रथम बार हुआ हो। शुभ समाचार सर्वप्रथम दिया जा रहा हो। शिक्षा प्रथम बार दी जा रही हो। परन्तु यहाँ कहा जा रहा है- "याद दिलाते रहिए।"

इस से प्रदर्शित है कि पाठ पढ़ाए जा चुके हैं, समाचार दिया जा चुका है परन्तु जन्मदाता को यह स्वीकार है कि चिन्ह ताज़ा होता रहे और मनुष्यों के मस्तिष्क से यह स्मृति मिटने न पाए।

क़ुरआन मजीद ने यह कहा कि याद दिलाते रहिए, परन्तु वे क्या वस्तुएं हैं जिनका याद दिलाना जन्मदाता को स्वीकार है, इसे क़ुरआन प्रस्तुत नहीं करता। फिर इसे क्योंकर समझें? मैं समझता हूँ कि यह उसी के द्वारा समझा जा सकता है कि जिसके द्वारा क़ुरआन के प्रत्येक आदेश का विवरण समझा जाता है।

क़ुरआन ने कहा "नमाज़ पढ़ो" नमाज कैसे पढ़ो? इसका कोई विवरण नहीं। दीनियात की प्रथम पुस्तक जो बच्चों को पढ़ाई जाती है उसमें भी नमाज़ की तरकीब लिखी होती है परन्तु क़ुरआन में नहीं। 'वज़ू' की तरकीब है, 'तयम्मुम' की तरकीब है परन्तु 'नमाज़' की तरकीब क़ुरआन में आरम्भ से अन्त तक कहीं नहीं। हाँ किसी स्थान पर मिलेगा "रुकू' करने वालों के साथ 'रुकू' करो" अब इसी सूची में सम्मिलित कर लीजिएः "अल्लाह के दरबार में सजदा करते हैं वे सब जो धरती और आकाश पर हैं।" इसे देखकर लिख लीजिए सजदा- कहीं है? "कहो कि अल्लाह सबसे बड़ा है।" इसको भी लिख लीजिए। "प्रशंसा करते हुए अल्लाह की 'तस्बीह' करो।" इसे 'तस्बीह' लिखिए। "अपने अल्लाह के नाम के साथ पढ़ो।" अब पढ़ने का ढंग भी लिख लीजिए। परन्तु

विचार करने योग्य प्राथमिक दृष्टिकोण यह है कि यह तो आप को ज्ञात ही है कि ये सब नमाज़ के अंग हैं परन्तु क़ुरआन में यह कहाँ है कि ये अंग उस नमाज़ के हैं जिसका ''नमाज़ पढ़ो'' में आदेश दिया गया था। उसी क़ुरआन में रोज़ा रखने का भी आदेश है परन्तु वह भी नमाज़ का अंग नहीं है। 'हज' का भी आदेश है परन्तु वह नमाज़ का अंग नहीं एक प्रथक इबादत (पूजा) है। इसी प्रकार सम्भव था कि 'रुकू' पृथक इबादत हो। सिजदा पृथक इबादत हो, इसी प्रकार नमाज़ के समस्त अंग पृथक इबादत हों और फिर सलवात कोई अन्य वस्तु हो। यह किसने बताया कि ये सब नमाज़ के अंग हैं।

अच्छा, यदि किसी प्रकार इसे समझ भी लीजिए तो ये सब पृथक हैं। यह मिश्रण कैसे हुआ? यदि कोई मुसलमान पहले सजदा (धरती पर मस्तक रखना) करे फिर 'रुकू' (झुकना) करे। फिर क़याम (खड़ा होना) कर ले फिर सूरों को पढ़कर 'तस्बीह' पढ़े, फिर अल्लाहु अक्बर (अल्लाह सब से बड़ा है) कहे। तो क़ुरआन के बताए हुए सब अंश तो हो गए परन्तु क्या नमाज़ हुई? (ये सब नमाज़ के अंग हैं परन्तु इस प्रकार क्रमबद्ध हैं: सर्वप्रथम 'क़याम' फिर 'रुकू' फिर सजदा, फिर तस्बीह। ज्ञात हुआ कि क़ुरआन को देखकर नमाज़ नहीं हुई मुहम्मद साहब की रचना को देखकर नमाज़ हुई है।

इसी प्रकार क़ुरआन में ज़कात (दान) देने का आदेश है परन्तु यह नहीं बताया गया कि दान कैसा हो, कितना दिया जाए, इन समस्त बातों का कोई उल्लेख नहीं है। हज को ले लीजिए। क़ुरआन कहता है ''मुसलमानों का काबा जाना अनिवार्य है।'' परन्तु वहाँ जाकर क्या करे इन सब बातों का कोई वर्णन नहीं है।

अब प्रत्येक मुसलमान को यह विचार करना चाहिए कि क्या क़ुरआन पढ़ाने अथवा बताने वाला यह भूल गया कि नमाज़ का ढंग भी बताना है? ज़कात का आदेश तो दे दिया और जल्दी में यह बताना भूल गया कि कितनी ज़कात दो? 'हज' का आदेश तो दे दिया परन्तु ग़ल्ती से उसका वर्णन न कर सका।

आम शिक्षक से भी यह भूल दो एक बार होगी परन्तु प्रत्येक बार भूल हो इसे बुद्धि स्वीकार नहीं करती। यहाँ किसी दो एक वस्तु का वर्णन शेष नहीं रह जाता तो कोई अशिक्षित काफ़िर यह समझ लेता कि यह भूल है परन्तु प्रत्येक स्थान पर मुख्य आदेश तो है, उसका सविस्तार विवरण नहीं है।

फिर यह शिक्षक तो मनुष्यों में से नहीं है। मुसलमानों के निकट तो क़ुरआन के शिक्षक तो मुहम्मद साहब भी नहीं हैं कि एक साधारण मनुष्य होने के नाते उसे भूल जाने की सम्भावना की जाए- यह क़ुरआन बताने वाला तो अल्लाह है और अल्लाह से भूल नहीं हो सकती।

क़ुरआन की आयत है जिसका अर्थ है ''तुम्हारा परवरदिगार भूलने वाला नहीं है'' फिर जब भूल से विवरण नहीं छोड़ा गया तो यह तो यह मानना पड़ेगा कि यह विवरण जानबूझकर छोड़ा गया और इस आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि क़ुरआन उतरा है इसलिए कि यह पर्याप्त न हो।(1) अल्लाह यह चाहता है कि रसूल से संसार वंचित न रह जाए। उसने क़ुरआन में हमें प्रत्येक स्थान पर रसूलुल्लाह का मोहताज बना दिया क़ुरआन कह रहा है कि ''नमाज़ पढ़ो और ज़कात दो'' परन्तु जब तक रसूल से न पूछोगे नमाज़ पढ़ ही नहीं सकते। क़ुरआन 'हज' का आदेश दे रहा है परन्तु आप 'हाजी साहब' बन ही नहीं सकते जब तक कि रसूल से हज का विवरण न पूछ लें। अर्थात क़ुरआन आश्रय ले रहा है एक मुख्य शिक्षक का। इसी कारण जब अल्लाह से प्रेम करने वालों की विशेषता बताई गई तो क़ुरआन ने कहा- ''यदि अल्लाह से प्रेम करते हो तो वह कार्य करो जो रसूल करता और बताता है।

(1) मुहम्मद साहब ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपने साथियों से कहा था मैं तुम्हारे बीच दो वस्तुएं (एक क़ुरआन, दूसरे मेरे परिवार वाले छोड़े जा रहा हूँ इनमें से यदि किसी को भी छोड़ दिया तो पथ भ्रष्ट हो जाओगे इस पर प्रथम ख़लीफ़ा ने कहा था कि हमारे लिए क़ुरआन प्रयाप्त है, आपके परिवार की ज़रूरत नहीं!)।

कोई समझ रहा था, अल्लाह से प्रेम करना हो तो अल्लाह के नाम की रट लगाते हुए ''हु, हक़'' करो, पटरे पर शरीर को टाँग लें, कीलों पर, परन्तु क़ुरआन ने यह सब कुछ नहीं कहा, उसने नाम लेकर कोई कार्य बताया ही नहीं। उसने तो एक व्यक्ति के पद-चिन्हों को प्रस्तुत कर दिया। अब प्रलय तक प्रत्येक मुसलमान को

अल्लाह से प्रेम करना है जब तक खुदा, खुदा है और बन्दे, बन्दे हैं। इस प्रेम के लिए कुरआन ने किसी कार्य की सूची नहीं बताई कि उसे याद कर लें और अल्लाह से प्रेम हो जाए। कुरआन ने तो यह कहा कि अल्लाह से प्रेम करते हो तो उनके पद-चिन्ह पर चलो। अब यदि कुरआन के आदेशानुसार इस पद-चिन्ह पर दृष्टि गाड़ दी तो फिर यदि उस 'आयत' को भूल भी जाएं तब भी वह पद चिन्ह मंज़िल तक पहुँचा देगा। परन्तु यदि वह पद-चिन्ह अदृष्य हो गया तो कुरआन के इन शब्दों का याद कर लेना मंज़िल तक नहीं पहुँचा सकता।

ज्ञात हुआ कि मंज़िल कुरआन में है और उस मंज़िल का विवरण पैग़म्बर के कार्यों में है। इसका सविस्तार विवरण समझने का उपाय यह है कि पैग़म्बर के कार्यों को देखिये और पैग़म्बर साहब जिन वस्तुओं को याद दिलाते रहे हों वही जन्मदाता को स्वीकार है। इसके अतिरिक्त 'शरीअत' (इस्लामी शिक्षाएं) की वह प्रणाली देखिये जिसे मोहम्मद साहब ने पहुँचाया इनमें जिन स्मृतियों के स्थापित रखने की व्यवस्था की गई हो, समझिये कि वही जन्मदाता को प्रिय है।

जब हम इस प्रकार देखते हैं तो निःसन्देह मुख्य ध्येय तो अल्लाह की याद है पैग़म्बर साहब का यही संदेश था किः- ''कहो कि अल्लाह के अतिरिक्त कोई ख़ुदा नहीं (इसमें) तुम्हारा ही लाभ है।''

यही कुरआन कह रहा था कि याद दिलाइए इस याद दिखाने में उन्हीं का नाम है। अब कुरआन और रसूल के कथन से यह प्रमाणित हो गया कि जिनके विषय में याद दिलाया जाए उस से लाभ उन्हीं को होगा जो स्मृति स्थापित रखें न कि उनको जिनका स्मरण हो।

अतः अल्लाह के स्मरण से अल्लाह का नहीं बन्दों का लाभ है और यह वह स्थान है कि अल्लाह का कोई भी मानने वाला यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि वह अल्लाह को लाभ पहुँचाएगा। उसको तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं यदि समस्त संसार उसके आगे अपना मस्तक झुका दे तब भी उसके वैभव में कोई वृद्धि नहीं होगी और यदि सब मिलकर उस से इनकार कर दें तब भी उसके वैभव में कोई कमी नहीं होगी। नास्तिक होना तो आज के प्रगतिशील काल में प्रगति का चिन्ह समझा जाता है अर्थात् हृदय एवं मस्तिष्क में तो चाहे खुदा हो परन्तु ज़बान पर न हो। ये जब कहने लगते हैं कि खुदा कोई वस्तु नहीं तो समझने लगते हैं हम बड़े आदमी हो गए। ये नास्तिक खुदा से बग़ावत करते हैं परन्तु यह इन्कार उसी समय तक है जब तक कि ''वह'' (अल्लाह) यह ज़बान चलाता रहता है और इसे आपकी इच्छाओं के वश में दे रखा है। उस समय तक चाहे मानिए चाहे न मानिए। परन्तु यदि वह इस ज़बान को मौन कर दे तो बात तो कर लीजिए। हाथ आपके वश में दे रखे हैं, चाहे गिरने वालों को आश्रय दीजिए चाहे किसी का घर जलाइए परन्तु अल्लाह उनकी शक्ति छीन ले तो फिर उन से कोई कार्य ले के देखिए। पैर आपके वश में दे रखे हैं चाहे ठीक मार्ग पर चलिए चाहे पथ भ्रष्ट हो जाइए परन्तु यदि वे व्यर्थ कर दिये जाएं तो स्थान से हिल तो लीजिए। इस्लाम की माँग तो केवल शराफ़त (भद्रता) से है, अर्थात जिसको बल पूवर्क मनवाया जाए उसे प्रसन्नता के साथ मानिए वरन् जिस बात को वह मनवाना चाहेगा उसे तो प्रत्येक दशा में मनवा लेगा अन्तर केवल यह होगा कि ऐसी परिस्थिति में वह पुण्य का भागी न होगा।

हमने सुना है कि कुछ देशों में यह दावा (प्रतिज्ञा) किया गया है कि हमने खुदा को अपने यहाँ से देश निकाला दे दिया है, परन्तु क्या वह निकल भी गया? कोई अल्लाह के राज्य से बग़ावत का कितना ही बड़ा दावेदार क्यों न हो, मैं तो जब मानूँ कि जब वह भेजे तो ये न आएं, और वह बुलाए तो ये जाएं नहीं। परन्तु घटना की परिस्थित तो यह है कि जब उस ने भेजा तो ये आए और जब बुलाएगा तो मौनता के साथ हाथ पसारे चले जाएंगे। साँस भी तो नहीं ले सकेंगे। फिर जिसे किसी वस्तु की आवश्यकता न हो उसको हमारी याद से क्या लाभ पहुँच सकता है?

दूसरी याद रसूलुल्लाह[स॰] की याद है। प्रत्येक विचार के मुसलमानों के निकट अज़ान में यह कहना आवश्यक है कि ''मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं'' फिर किसी इस्लामी पुस्तक में 'अज़ान' देने वालों को यह आदेश नहीं कि वह इस शपथ को दो बार

कहे परन्तु रसूल की गवाही एक बार हो जिसके अल्लाह और बन्दों का अन्तर ज्ञात हो जाए। या यह कि "अल्लाह सब से बड़ा है" को उच्च स्वर से कहे और "मोहम्मद अल्लाह के रसूल हैं" को कुछ धीरे से कहे कदापि ऐसा कोई आदेश नहीं वरन् दोनों वाक्यों को एक ही प्रकार कहना है। इसके पश्चात् 'अक़ामत' है। आप 'अक़ामत' न कहिए वह दूसरी बात है परन्तु यदि 'अक़ामत' कहियेगा तो उन्हीं दोनों वाक्यों को उसी प्रकार कहना होगा।

अब स्वयम् नमाज़ में आइये प्रत्येक दूसरी रकात के पश्चात जो तशह्हुद पढ़ा जाता है उसमें कहा जाता हैः- "मैं गवाही देता हूँ के अल्लाह के अतिरिक्त और कोई दूसरा ख़ुदा नहीं वह एक एक है और उसका कोई साथी नहीं, मोहम्मद साहब उसके बन्दे और रसूल हैं।"

अब मुसलमानों को विचार करना है नमाज़ ऐसी मुख्य पूजा में रसूल का नाम लेना और उनकी कल्पना करना पाप तो नहीं होगा? याद रखिये कि पाप से प्रत्येक मुसलमान को बचना चाहिए और प्रत्येक मुसलमान को नमाज़ भी पढ़ना है तो अब हम सब एक नौका पर सवार हैं। नमाज़ में रसूल सम्मिलित हो गए हैं फिर भी पाप नहीं है। यह रहस्य प्रत्येक मुसलमान को समझना और समझाना है। अब जो हल मैं प्रस्तुत करूँ तो या तो संसार उसे स्वीकार करे और मन चाहे तो मेरा कृतज्ञ हो कि मैंने सबका बोझ हलका कर दिया। नहीं तो स्वयम् कोई हल प्रस्तुत करे मैं उस पर विचार करने के लिए तैयार हूँ।

मैं कहता हूँ कि रसूल की जो प्रशंसा हो रही है वह क्या है? यदि यह कहा जा रहा हो कि किसी बड़े बाप के बेटे हैं, अथवा यह कहा जाए कि वे बनी हाशिम के परिवार से सम्बन्ध रखते हैं, अथवा यह कि वे अरब के वैभवशाली राजा हैं तो यह अल्लाह की प्रशंसा नहीं होगी परन्तु यह कहना कि मोहम्मद अल्लाह के रसूल और उसके मुख्य बन्दे हैं तो यह केवल अल्लाह की प्रशंसा है। इस से यह सिद्धान्त स्थापित होता है कि यदि रसूल की प्रशंसा सांसारिक विशेषताओं के दृष्टिकोण से हो तो वह केवल रसूल की प्रशंसा है। बस अब इस सिद्धान्त को सुरक्षित रखना चाहिए।

रसूल का आदर भी यदि बड़े बाप के बेटे के दृष्टिकोण से हो, बनी हाशिम परिवार के माननीय व्यक्ति के दृष्टिकोणसे हो, अरब के महान राजा के दृष्टिकोण से हो तो वह केवल रसूल का आदर होगा, परन्तु जो आदर अल्लाह के रसूल के दृष्टिकोण से हो वह अल्लाह का आदर होगा। अब जो मुसलमान रसूल के रौज़े का चुम्बन लेता है उस से पूछिए कि क्या वह अरब देश के वैभवशाली राजा की 'ज़रीह' का चुम्बन ले रहा है अथवा रसूलुल्लाह की ज़रीह का? यह चुम्बन रसूल के मज़ार का है परन्तु इबादत (पूजा) अल्लाह की है। बस अब इसी सिद्धान्त को गाँठ में बाँध लीजिए कि यदि किसी का आदर उसकी सांसारिक विशेषताओं के दृष्टिकोण से किया जाए तो यह उसका व्यक्तिगत आदर होगा, परन्तु यदि वह आदर अल्लाह के सम्बन्ध से हो तो वह केवल अल्लाह का आदर होगा, और किसी प्रकार पाप नहीं हो सकता। अतः यदि किसी ऐसे व्यक्ति का आदर हो जो अल्लाह के मार्ग में भेंट चढ़ा हो तो उस आदर को भी जन्मदाता का आदर समझना चाहिए।

यदि सांसारिक विशेषताओं के दृष्टिकोण से मुक़ाबला होता तो दमिश्क़, बग़दाद और कुर्तुबा के वैभवशाली राजमहलों से सिर न टकराते। अरे जो लुटे हुए दर को याद करें उनकी क्रियाओं में अल्लाह के सम्बन्ध के अतिरिक्त और क्या भावनाएं हो सकती हैं जो उनमें विद्यमान हैं और जो उन्हें आदर करने पर विवश करती हैं?

अब यह विचार करना है कि अज़ान में रसूल का नाम सम्मिलित हुआ अक़ामत तथा नमाज़ में सम्मिलित हुआ तो क्या सब मुहम्मद साहब ने स्वयं कर दिया? केवल इस कारण कि मेरा नाम शेष रहे? यदि किसी ने यह विचार कर लिया तो रिसालत पर से विश्वास (ईमान) समाप्त हो गया। फिर क़ुरआन में देखिए अल्लाह कह रहा है कि "हम ने आप के नाम को उच्च किया" क़ुरआन में जब अल्लाह तथा अल्लाह की विशेषताओं का विवरण होता है तो "मैं" कहा जाता है ताकि यह न ज्ञात हो कि अल्लाह का कोई साथी भी है। जैसे "मैं तुम्हारा परवरदिगार हूँ" परन्तु जहाँ क्रियात्मक शक्ति प्रदर्शित होती है वहाँ "हम" कहा जाता है जहाँ ये शब्द हो वहाँ

समस्त शक्तियों को एक चैलेंज होता है जैसे "हमने आपके वंश को वृद्धि प्रदान की।" अब इसे मिटा कौन सकता है?

"हमने क़ुरआन उतारा है और हम इसकी रक्षा करने वाले हैं।" अर्थात इसे समाप्त कौन कर सकता है? इसी प्रकार कहा गया "हमने आप के नाम को उच्च किया" अब इसे नीचा कौन कर सकता है? ज्ञात हुआ कि यह रसूल का प्रबन्ध नहीं वरन् अल्लाह की ओर से प्रबन्ध है और यह कोई नई बात नहीं।

क़ुरआन में है "तुम मुझे याद करो, मैं तुम्हें याद करूँगा" अर्थात बदला कार्य कुशलता का मिलता है। हम उसे याद करेंगे अपनी समस्त विवशता के साथ, वह हमें याद करेगा अपनी महानता की शक्ति के साथ। अब याद करना तो सीमित वस्तु है परन्तु जो उसके वर्णन को स्थापित करे वह उसके लिए क्या करेगा। यही कि वह उसके वर्णन को सर्वदा के लिए स्थापित कर दे।

यहाँ तक ख़ुदा और रसूल के वर्णन की मंज़िल तय हुई अब कोई और वस्तु जिसका वर्णन रसूलुल्लाह समय-समय पर करते रहे हों वह चाहे कोई व्यक्ति हो या कोई घटनाएं। अन्वैषण से हमें रसूल के चरित्र में घटनाएं तथा व्यक्ति दोनों ही मिल जाते हैं, समय-समय पर जिनका वर्णन रसूल का चरित्र और उनकी सुन्नत रहा।

वे कोई और व्यक्ति नहीं रसूल के घर वाले हैं। वे रसूल के विशेष सम्बन्धी हैं अर्थात रसूल की एक पुत्री है जिसका वर्णन बारम्बार कर रहे हैं। एक दामाद है जो दामाद होने के पूर्व आपका भाई भी था। और दो नाती हैं ये वे हैं जिनका वर्णन बारम्बार कर रहे हैं।

कुछ व्यक्ति वे हैं जिनके मस्तिष्क में यह चुभन है कि दामाद, पुत्री तथा नातियों का वर्णन बारम्बार क्यों? इस स्थान पर मैं प्रत्येक बुद्धि रखने वाले को सम्बोधित करता हूँ। स्मरण रखना चाहिए कि दामाद, पुत्री तथा नातियों का स्थान अपने पश्चात् है। असली प्रेम अपनी ज़ात से होता है और वही, पुत्री, दामाद तथा नातियों के प्रेम का कारण होती है।

अब एक मुसलमान वहाँ से आगे बढ़ गया जहाँ, अज़ान, अक़ामत तथा नमाज़ में अपना नाम रखा जा रहा था वहाँ ये विचार न किया कि अपने नाम के लिए इस्लामी शिक्षाओं के आदेश बना दिये हैं तो अब रसूल के घर वालों तक पहुँचकर क्यों अपने ईमान को ख़तरे में डाल रहा है।

यदि अपने नाम का रखना अल्लाह के कर्तव्यों के अनुभव से है तो घर वालों का बारम्बार वर्णन करना भी उसी अनुभव का परिणाम है। वह न तो इस कारण था कि मेरा नाम रहे, न इस कारण है कि ये मेरी पुत्री और दामाद हैं- वरन् उनके नाम के शेष रहने से इस्लाम शेष है और ये उनके घर वाले भी कुछ ऐसे ही हैं कि उनके नाम से अल्लाह के ध्येय शेष हैं।

अल्लाह की याद न अल्लाह के लाभ के लिए थी न रसूल की याद रसूल के लाभ के लिए, और न उनके घर वालों की याद उनके घर वालों के लाभ के लिए है वरन् यह सब अल्लाह के बन्दों के लाभ के लिए था। अब विचार कीजिए और समझिये कि रसूल के घर वालों के स्मरण से संसार निवासियों को क्या लाभ है?

कहा जाता है कि इन व्यक्तियों की इतनी प्रशंसा की जाती है जैसे ज्ञात होता है कि पैग़म्बर के पास और कोई काम ही न था और इसे इस प्रकार कहा जाता है कि सुनने वाला जैसे लज्जित हो जाता है। परन्तु मैं तो नेत्र में नेत्र डालकर कहूँगा कि यह प्रश्न ऐसा है जैसे कोई कहे कि ये रसूल कैसे हैं कि बस हर समय क़ुरआन ही पढ़ा करते हैं उन्हें कुछ और आता ही नहीं। क्या यह प्रश्न कोई विशेषता रखता है?

महाश्य! ये उसी क़ुरआन की शिक्षा के लिए आए हैं तो क़ुरआन नहीं तो क्या "तौरेत", "ज़बूर" और "इन्जील" पढ़ें। जिस पुस्तक के प्रचार के लिए आए हैं उसी को पढ़ते हैं। बस इसी प्रकार जब क़ुरआन की शिक्षा देते हैं तो जो उसकी अति सुन्दर कीर्तियाँ हैं उन्हीं को सम्मुख लाते हैं।

नूतन शिक्षा प्रणाली यह है कि डाइरेक्ट शिक्षा न हो वरन् किसी के द्वारा हो, अर्थात् अक्षर याद न कराइए, चित्र दिखाइए। बालक समझेगा चित्र देख रहा हूँ और इसी आधार पर उसको वे अक्षर याद हो जाएंगे। संसार इस शिक्षा के रहस्य को आज समझा है परन्तु ख़ुदा और

रसूल इस रहस्य को पहले ही से जानते थे। क़ुरआन का पढ़ना डायरेक्ट शिक्षा थी और घर वालों को दिखाना किसी के द्वारा शिक्षा थी।

जिस प्रकार उस समय शिक्षा दो प्रकार से दी जा रही थी वही परिस्थिति आज भी है, हमारी मजलिसें भी स्कूलों की भांति पाठशालाएं हैं परन्तु स्कूल हैं डाइरेक्ट शिक्षा के केन्द्र और मजलिसें शिक्षा की वे केन्द्र हैं जहाँ किसी के द्वारा शिक्षा दी जाती है। यहाँ हम रोने के लिए आते हैं और अनेकों पाठ पढ़ कर चले जाते हैं। सत्य उनके कानों तक पहुँच जाता है। हुसैन के वर्णन के साथ समस्त पैग़म्बरों की घटनाएं स्मरण हो जाती हैं और इस्लाम की समस्त शिक्षाएं उन्हें ज्ञात होती रहती हैं सत्य की सभी पथ प्रदर्शकों की स्मृति हुसैन की स्मृति में है और क्यों न हो इस बलिदान से सबका बलिदान है। क़ुरआन ने एक स्थान पर एक वस्तु का नाम लेकर कहा है किः- ''अल्लाह के दिनों की याद ताज़ा करो।'' अल्लाह के दिन कौन हैं? वे जिन में किसी असत्य तथा सत्य की बीच संघर्ष हुआ हो। जिस दिन उसके मार्ग में कोई महान कार्य हुआ हो- इस से प्रमाणित है कि ऐसे किसी दिन की याद स्थापित करना 'बिदअत' (पाप) नहीं है। दिन याद दिलाया जा रहा है तो तिथि के अनुकूल किसी दिन की याद स्थापित करना 'बिदअत' नहीं हो सकती। अतः इस्माईल के बलिदान की याद तिथि की अनुकूलता के साथ ही स्थापित है और इस्लाम के सभी सम्प्रदाय इस से सहमत है कि यह याद स्थपित रखी गई है 'ईदुल-अज़्हा' के नाम से। यह स्मृति है इस्माईल के बलिदान की।

अब मुसलमान विचार करें कि किसी दिन एकत्र होकर इस्माईल का वर्णन हो जाया करता परन्तु वही दिन नियुक्त कर दिया जिस दिन बलिदान हुआ था 10 बक़रीद और केवल बलिदान का दिन ही नहीं वरन् उसके पूर्व एक दिन 'अरफ़ा' को भी याद रखा गया। बक़रीद के उन दस दिनों को यह विशेषता दे दी गई कि उन्हीं दिनों में हज किया जाता है।

फिर इस्माईल के लिए बक़रीद के प्रथम 10 दिन यादगार (स्मृति) बन गए तो हुसैन के लिए मोहर्रम के प्रथम 10 दिन क्यों न यादगार रहें। यह बलिदान 10 मोहर्रम को दिया गया परन्तु 10 मोहर्रम का जो दिन है वह इस बलिदान की यात्रा की एक मंज़िल है।

जब हुसैन कर्बला पहुँचे तो धरती का नाम पूछा। किसी ने कह दिया ''कर्बला'' तो आप ने कहा- ख़ुदा की क़सम यहाँ हमारे ख़ेमे (शिविर) गाड़े जाएंगे।'' यह आज की तिथि का हाल है। फिर- यहीं हमारा रक्तपात होगा।'' यह 10 मोहर्रम के तीसरे पहर तक का हाल हो गया। इसके पश्चात् कहा- ''यहीं हमारी मर्यादा और शताब्दियों की परम्परा का विनाश होगा।'' यह 10 मोहर्रम के तीसरे पहर के पश्चात् से हुसैन के घर वालों की रिहाई के काल तक की सम्पूर्ण परिस्थिति है।

वह इस्माईल के बलिदान की याद थी और यह हुसैन के बलिदान की याद है। इस्माईल के बलिदान के 10 दिन बलिदान तक समाप्त हो गए परन्तु हुसैन के बलिदान के प्रथम 10 दिन उनके बलिदान तक हैं ये भाई के दिन हैं। और दूसरे 10 दिन हुसैन के बलिदान के पश्चात् से आरम्भ होते हैं ये 10 दिन इमाम हुसैन की बहन ''ज़ैनब'' के हैं। हुसैन का बलिदान तो 10 दिन के भीतर ही हुआ परन्तु दूसरे 10 दिनों की संख्या अंगिनत हैं जबकि रिहाई दूसरे वर्ष हुई हो तो अब वर्ष का प्रत्येक दिन ''ज़ैनब'' का हो गया। वह हुसैन का बलिदान था और यह ज़ैनब का बलिदान है।

अब मुसलमान निर्णय करें, कि अल्लाह के ख़लील (इब्राहीम) के पुत्र का बलिदान हो तो याद स्थापित करें और अल्लाह के हबीब (मुहम्मद) के पुत्र का बलिदान हो तो याद मनाना बिदअत (पाप) हो? यद्यपि कि इब्राहीम से हमारा सम्बन्ध केवल विश्वास पर आधारित है, रचनात्मक रूप से नहीं। तो प्रथम कालीन रसूलों की तो याद मनाई जाने योग्य हो और अपने रसूल की कार्यवाहियों की याद न मनाई जाए?

अब कहा जाता है कि याद शोक के रूप से क्यों सम्पन्न की जाए प्रसन्नता पूर्वक याद क्यों न सम्पन्न हो। यह बात बहुत समझ-बूझ कर कही जा रही है याद रहे कि अपनी प्रसन्नता में हम ही सम्मिलित रहेंगे और इस प्रकार वह याद सर्वदा शेष न रहेगी। परन्तु शोक पूर्ण

स्मृति में समस्त जग सम्मिलित हो जाता है और इस प्रकार यह याद सर्वदा शेष रहेगी। लोग यह चाहते हैं कि हम हुसैन की याद को अप्राकृतिक बना दें परन्तु हम इस धोखे में आने वाले नहीं। दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर दर्शन ही से दिया जा सकता है हुसैन की याद प्रसन्नता पूर्वक उसी समय मनाई जाती जब इस्माईल के बलिदान की याद शोकपूर्ण रूप में मनाई जाती। फिर सुनिए और याद रखिए कि यदि इस्माईल के बलिदान की स्मृति शोक पूर्ण रूप से सम्पन्न होती तो हुसैन की स्मृति प्रसन्नता पूर्वक सम्पन्न होती। परन्तु वह ईद है। ईद किसकी? यही तो कि नबी का पुत्र बलिदान से बच गया। तो अब मोहर्रम में मातम कीजिए, शोक मनाइये इस कारण कि तुम्हारे रसूल के पुत्र का वध कर डाला गया और पैग़म्बर का बाग़ लुट गया।

फिर कहा जाता है कि रसूल के पुत्र का बलिदान हुआ और वे उच्च स्तर पर पहुँचे तो इस पर प्रसन्न होना चाहिए परन्तु इस उच्च स्तर की महानता को मुहम्मद साहब अधिक जानते हैं या ये नाम मात्र मुसलमान? तो फिर देखिए कि 10 मोहर्रम को रसूलुल्लाह प्रसन्न दिखाई दिए या शोकातुर?

सुन्नियों के प्रसिद्ध और माननीय ग्रन्थ (पुस्तक) ''सही तिरमिज़ी'' में यह घटना लिखी है कि दस मोहर्रम की संध्या को उम्मे सलमा (रसूलुल्लाह की एक पत्नी) ने मुहम्मद साहब को नंगे सिर देखा इस प्रकार कि उनके सिर और दाढ़ी पर मिट्टी पड़ी थी हाथ में एक शीशा है जिसमें ताज़ा रक्त जोश मार रहा था, और कहा कि मेरा पुत्र हुसैन शहीद कर दिया गया यह मेरे सिर और दाढ़ी पर कर्बला की मिट्टी है और शीशे में हुसैन और उनके साथियों का रुधिर है जिसे मैं एकत्र करता रहा हूँ।

रसूल अपने हुसैन पर रो रहे हैं तो हुसैन अली अकबर (हुसैन के पुत्र) के शव पर रो रहे हैं। अब कोई न कहे कि यह रोना हुसैन की प्रतिभा के विरूद्ध है। रसूल आजीवन रोए और मृत्यु के पश्चात भी रोए। इसी प्रकार हुसैन भी रो रहे हैं, यह धीरज के विरूद्ध नहीं। धीरज तो यह है जो युवक को रो चुका वह छः महीने के बालक का भी बलिदान देने के लिए उसे हाथों पर लाता है।

कभी कहा जाता है कि कहाँ तक रोओगे? बस रो चुके इतने दिन कहीं रोया जाता है। मैं कहता हूँ कि यही तो प्राकृतिक प्रबन्ध है। यदि उन्हें वाह्य रूप से रो लेने दिया जाता जिन्हें रोने का अधिकार था तो कदाचित इतने समय तक न रोया जाता। हुसैन को रोने वालों की कमी न थी, ज़ैनब और उम्मे कुलसूम ऐसी बहनें, लैला और रबाब ऐसी पत्नियाँ, सकीना और फ़ातिमा ऐसी बेटियाँ, परन्तु उन्हें रोने ही कब दिया गया, इधर शहादत का समाचार मिला, उधर दुश्मन आग लेकर आ गए। अब पर्दे के लिए जिहाद करें कि रोएं और फिर ग्यारहवीं को पूज्यनीय स्त्रियाँ बन्दी बना दी गईं और कूफ़ा तथा शाम (सीरिया) के मार्ग में यदि किसी के नेत्र में आँसू आता तो शत्रु नैज़ा (बल्लम) की नोक से कष्ट देते थे। उनके धीरज का बदला अल्लाह ने उनको ऐसा दिया कि तुम्हारे लिए धरती और आकाश रोएंगे। जो आज भी हुसैन का मातम कर रहे हैं वे सब ज़ैनब का साथ दे रहे हैं। ज़ैनब भी रोने ही की प्यासी थीं- यद्यपि की जब सातवीं मोहर्रम को हुसैन और हुसैन के घरवालों पर कर्बला में पानी बन्द हुआ था फिर आज तक इतना पानी न मिला था जो उनकी प्यास बुझाता परन्तु प्यास थी तो आँसू की अतः जब रिहाई का आदेश मिला तो यज़ीद ने कहा कि चाहें यहाँ रहिए चाहे मदीने जाइए आपको अधिकार है। यह रसूल के परिवार की विशेषता थी कि सय्यदे सज्जाद कहते हैं कि फूफ़ी से पूछे बिना कुछ नहीं कह सकता।

कदाचित यह प्रथम अवसर था कि यज़ीद ने सय्यदे सज्जाद को बुलाया था, और ज़ैनब साथ न थीं, ज्ञात नहीं कि इतने समय में ज़ैनब पर क्या बीत गई। सम्भवतः भतीजे ने फूफी को द्वार पर पाया हो, जैसे ही भतीजा आया सिर से पैर तक देखा होगा। अन्तर का तो अनुभव कर ही लिया। आए हैं तो हथकड़ी तथा बेड़ी काटी जा चुकी है, तौक़ अलग किया जा चुका है। पूछने पर बताया कि यज़ीद ने रिहा कर दिया है, और कहा कि यहाँ रहें या मदीने जाएं। ज़ैनब ने पूछा कि फिर तुम ने क्या कहा? उत्तर दिया कि आपसे पूछे बिना मैं क्या कह सकता था।

शेष..... पेज 33 पर

इमाम हुसैन[अ०] का शहीद होना और इस्लामी संविधान की रक्षा

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैयिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ता-ब सराह
अनुवादक- मु० र० आबिद, लखनऊ

इमाम हुसैन[अ०] का शहीद होना इस्लामी संविधान की रक्षा के लिए था। शान्ति काल में शरीअत (इस्लाम-विधि) तो थी किन्तु संविधान की आत्मा बदल दी गयी थी।

इमाम की शहादत पर मौलाना सैय्यद अबुल आला मौदूदी का एक भाषण 'दावत' (उर्दू दैनिक) 10 जुलाई 1960

26 जून को टेम्पिल रोड स्थित एक कोठी में, जिसके निवासी एक शिया धर्म के एडवोकेट हैं, एक मजलिस आयोजित हुई। शामयानों के नीचे कोठी के लान में दरियाँ बिछी हुई थीं, और शियों से ज़्यादा सुन्नी बैठे थे क्योंकि अख़बारों में एलान हो चुका था कि मौलाना अबुल आला मौदूदी 'शहादत का उद्‌देश' के विषय पर भाषण देंगे। संयोगवश मौसम भी बहुत सुहावना था। रात को हल्की सी फुहार पड़ चुकी थी और सुबह के साढ़े सात बजे आसमान पर हल्का-हल्का सा बादल छाया हुआ था। सभा की जगह पर बिजली के पंखों ने वातावरण को और भी ठंडक दे दी थी। ऐसे में मौलाना अबुल आला मौदूदी भाषण के लिए खड़े हुए।

परम्परागत सबोधन, हम्द (ईश्वर स्तुति) और नात (पैग़म्बर मुहम्मद साहब की सराहना) के बाद कहाः आज मुहर्रम का आरम्भ है और मेरे सामने जो गणमान जमा हैं उनमें शिया और सुन्नी दोनों ही हैं। और वे इस कारण यहाँ आए हैं कि उन्हें अहलेबैत और इमाम हुसैन और इस्लाम से दिल से प्यार है और वह मालूम करना चाहते हैं कि कर्बला में जो घटना सामने आई उसके पीछे उद्‌देश क्या था जिसके लिए श्रेष्ठ इमाम ने न केवल अपनी जान दे दी बल्कि अपने घर वालों बाल बच्चों को भी कटवा दिया। सवाल यह है कि आख़िर महामहिम इमाम यह चरण लेने पर तैयार क्यों हुए? क्या उस समय समुदाय का धर्म बदल गया था, उसने इस्लाम छोड़कर नास्तिकता अपना ली थी? क्या लोग भगवान को एक मानने से मुकर गए थे? क्या वह नबी (भगवान का संदेश लाने वाले मुहम्मद साहब[स०]) के नबी होने को मान नहीं रहे थे। सामाने की बात है कि इनमें से कोई भी बात नहीं थी। जो बात हुई थी वह यह थी कि देश का संविधान बदल दिया गया था, उसका उद्‌देश्य बदल दिया गया और छोड़ दिया गया था। महामहिम इमाम इस परस्थिति के सुधार के लिए उठे थे।

जिस संविधान पर अल्लाह के रसूल (ईश-दूत हज़रत मुहम्मद[स०]) ने इस्लामी राज खड़ा किया था और जिस पर 'ख़िलाफ़ते राशिदा' (पुण्य उत्तराधिकार-चार ख़लीफ़ाओं का राज्य) के समय राज का प्रबन्ध चलता रहा था उसका आधार यह थाः देश ईश्वर का है, वही विधि देने वाला (विधाता), वह असल स्वामी मालिक है और शासक, जिसके हाथ में शासन प्रबन्ध की लगाम है, वह अल्लाह की शासकता को स्थापित करे और उसके क़ानून को लागू करना उनका काम है देश का क़ानून इसलिए नहीं कि शासक उसे जनता पर लागू करे बल्कि वह इसलिए है कि राजा प्रजा, शासक शासित दोनों पर बराबर से लागू हो।'

इसका दूसरा सिद्धान्त यह था कि शासक जनता की राय से सत्ता पर आये। लोग उसको इस परिस्थिति में अपना राजा शासक बनायें जबकि वह अभी सत्ता में

नहीं आया है और उसके बाद बैअत (बेचना, अधीनता की शपथ) करें, वह इस तरह से बैअत न ले कि सत्ता पर आ जाए और फिर लोगों से वोट ले। ऐसे में उसका विरोध कौन करेगा और उसकी बैअत कौन न करेगा? सामने है कि कोई नेक सदाचारी संयमी और कर्तव्य का एहसास रखने वाला सत्ता को इस तरह लपक कर न लेगा। बैअत के द्वारा सत्ता में आना एक बात है और सत्ता में आकर बैअत लेना दूसरी बात है। हज़रत हुसैन रज़ियल्लाहो अन्हु (ईश्वर उनसे राज़ी हो जाय) ने देखा कि गाड़ी की दिशा बदल गयी है। अब पहले लोग सत्ता में आये, फिर उन्होंने बैअत ली। इस्लामी संविधान का तीसरा आधार 'परामर्श' है। कुरआन में *'अम्रुहुम शूरा बैनिहिम'* (उनके कामकाज में आपसी परामर्श है) की सूक्ति है। इसका सही इस्लामी तरीक़ा यह है कि समाज में जो लोग सम्मति वाले, ज्ञान, ईमानदारी और संयम-सदाचार से भरोसे वाले हों उनको साथ लेकर काम किया जाय। अल्लाह के रसूल[स०] का यही तरीक़ा था। परन्तु 'परामर्श' का एक दूसरा तरीक़ा ग़लत है। और वह यह कि हाँ में हाँ मिलाने वालों में से 'परामर्श समिति' का चुनाव किया जाय। हज़रत हुसैन[रज़ि०] ने देखा कि सही तरीक़ा बदल कर ग़लत तरीक़ा अपना लिया गया। अब 'परामर्श समिति' तो है मगर अपने ही परिवार के लोगों से, अपने ही सम्बन्धियों से, अपने ही सेना नायकों से अपने ही नियुक्त किये हुए राजकर्मियों से चुनी गयी है यानी कुछ स्वार्थी लोग हैं जो सत्ता में आ गये हैं और उन्होंने स्वार्थी लोगों को अपना सलाहकार बना लिया है। सामने है कि जब स्वार्थी सत्ता में हों और स्वार्थी ही सलाहकार तो समुदाय के विरुद्ध सांठगांठ नहीं करेंगे। फिर संविधान में कोषागार की जो इस्लामी धारणा प्रस्तुत की गयी थी, वह यह है कि माल सब ख़ुदा का है और समाज की अमानत (विश्वास में सौंपी हुई चीज़), शासक, राजपाल, सत्ता वाले लोग इसके विश्वासधारी (ट्रस्टी) हैं और इस समाज पर ख़र्च करने के दायी हैं और इसकी पाई-पाई का हिसाब उन्हें ख़ुदा को देना है। ये शासकों, राजकर्मियों और दरबारियों और परिवार के लोगों का माल नहीं और न उन पर ख़र्च करने के लिए है। लेकिन महामहिम इमाम ने दखा कि समुदाय का कोष सम्राट के परिवार की सम्पत्ति बना दिया गया है, मानो समाज उनका उपराज्य है जो उनको कर देता है और उनसे हिसाब पूछने का अधिकार नहीं रखता इसके सम्बन्ध में कि यह माल कहाँ से आया, कैसे आया, और न ख़र्च के बारे में कि कहाँ ख़र्च किया, और समुदाय की स्थिति दुधारु गाय की है जिस पर जितना ज़ुल्म करके दूध निचोड़ सकते हो निचोड़ लो।

इसके अलावा संविधान में न्याय और क़ानून की धारणा यह थी कि: 'हर व्यक्ति क़ानून के अधीन है, उसके ऊपर नहीं, कोई परिवार, कोई गुट ऐसा नहीं जिस पर क़ानून लागू न हो सके। न्याय सबके लिए बराबर और बेलाग हो और सब पर लागू हो और जज जब नियुक्त हो जाय तो वह अपने ज्ञान, विवेक और सम्मति के अनुसार फैसला करने में बिल्कुल आज़ाद हो, उस पर दबाव डालने वाला कोई न हो।

इसके पहले परिस्थिति ऐसी ही थी, मगर अब जो बदलाव हुआ था, वह यह था कि क़ानून और अदालत की दो धारणाएं पैदा हो गई थीं। पहली यह कि बादशाह, परिवार, उसके जुड़े हुए क़रीबी और राजकर्मी क़ानून के लिए हैं (क़ानून) उनके लिए नहीं है। और दूसरे यह कि ऐसे जज नियुक्त किये जाते थे जो फैसला करने में आज़ाद नहीं थे। उनको ऊपर से चिट्ठियाँ जाती थीं कि उस मुक़द्दमे में इस तरह फैसला किया जाय। यानी न्यायपालिका कार्यपालिका के अधीन होकर रह गयी थी।

यह था वह चित्र जो संविधान के बारे में इमाम ने देखा कि बन रहा है। अगर बात लोगों की होती तो सहन किया जा सकता था। मगर वह देख रहे थे कि यह पद्धति सिस्टम ही बदल रही है और अगर ग़लत सिस्टम ही स्थापित हो गया तो उसका बदलना असम्भव हो जायेगा और सच्चाई सदा के लिए गुम होकर रह जायगी।

इमाम[अ०] का शहीद होना और इस्लामी संविधान

(आयतुल्लाहिल उज़मा सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी)

26 जून 1960 की घटना है कि टेम्पिल रोड

(लाहौर) पर स्थित एक कोठी में एक मजलिस आयोजित हुई और उसकी कार्रवाई 'जमाअते इस्लामी हिन्दुस्तान' के अख़बार 'दावत' दिल्ली में 10 जुलाई 1960 को प्रकाशित हुई थी, जिसका सार मोटे अक्षरों की इन शीर्षकों से व्यक्त किया गया था जो लेख के ऊपर अंकित हैः-

पहली शीर्षकः इमाम हुसैन[अ०] की शहादत इस्लामी संविधान की रक्षा के लिए थी।

दूसरी शीर्षकः उनके काल में शरीअत (इस्लामी विधि) मौजूद थी किन्तु संविधान की आत्मा बदल दी गई थी।

इसके अन्तर्गत मौलाना (अबुल आला मौदूदी) कहते हैंः

''आख़िर महामहिम इमाम यह चरण उठाने पर क्यों तैयार हुए। क्या उस समय समुदाय का धर्म बदल गया था? उसने इस्लाम छोड़कर नास्तिकता अपना ली थी। क्या लोग ख़ुदा को मानने से मुकर गये थे। खुला है कि इनमें से कोई बात नहीं थी। जो बात हुई थी वह यह थी कि देश का संविधान बदल गया था, उसकी आत्मा बदल गई थी। उसका उद्देश्य बदल गया था और छोड़ दिया गया था। और महामहिम इमाम इस परिस्थिति के सुधार के लिए उठे थे।''

इस क्रम में सबसे पहली बात यह महसूस होती है कि जनाब मौदूदी साहब ने एक ऐसे माहौल में जहाँ वह राजनीतिकी पर खुले हुए स्टेज से कोई आवाज़ उठा नहीं सकते थे, हज़रत इमाम हुसैन की मजलिस को राजनैतिक दृष्टिकोण के संचार का माध्यम बनाया है। और कुछ शियों ने उद्देश्य में एक होने के आधार पर और कुछ ने अत्याचार के मारे हुए इमाम से प्रेम में इस अवसर को यही भला जान कर कि मौलाना मौदूदी इमाम हुसैन[अ०] के ज़ाकिर के रूप में मिंबर पर आ रहे हैं उनके साथ में साथ दिया। मगर हम समझते हैं कि मौदूदी साहब को हुसैन की मजलिस को इस उद्देश्य के लिए उपयोग करना जहाँ इस प्रकार के मतों की अभिव्यक्ति ख़तरे से भरी हो, इमाम की मजलिस के साथ कोई हितैषी वाला व्यवहार नहीं है।

दूसरा सैद्धान्तिक सवाल जो मौलाना के इस भाषण से पैदा होता है, यह है कि कर्बला की घटना में हज़रत इमाम हुसैन की ओर से पहल थी या आप के विरूद्ध दमिश्क़ (शाम) की सरकार की ओर से थी जिसका सामना आपने सहन, धैर्य और दृढ़ता से किया।

जनाब मौदूदी साहब के ये शब्द हैं कि 'महामहिम इमाम यह चरण उठाने पर क्यों तैयार हुए' फिर आख़िर उन्होंने कहा 'देश का संविधान बदल गया था और महामहिम इमाम इस परस्थिति के सुधार के लिए उठे थे' कुछ ऐसी सोच पैदा करते हैं कि पहल आपकी ओर से थी और इसके लिए मौलाना को यह सोचने की आवश्यक्ता महसूस हो रही है कि आप पहल पर क्यों तैयार हुए।

तीसरा सवाल- हज़रत के चरण को इस बात से हटकर कि वह पहल करने में था या जवाबी और टकराव, यह ख़ास बात है कि जनाब मौदूदी साहब ने हज़रत (इमाम) के चरण का प्रतिपक्ष मुस्लिम जनता को ठहराया है और इसलिए यह सवाल पैदा किये हैं कि उस समय समुदाय का धर्म बदल गया था, उसने इस्लाम को छोड़कर नास्तिक्ता अपना ली थी? क्या लोग ख़ुदा को मानने से मुकर गये थे या वे नबी[स०] के नबी होने से मुकर गये थे फिर इस सब बातों का जवाब 'नहीं' में देते हुए कहते हैं किः 'सामने की बात है कि इनमें से कोई भी बात नहीं थी।

जबकि आपके टकराव और (धर्म) संग्राम की टक्कर कोई सीधी जनता से न थी। आपका टकराव तो दमिश्क़ राज से था जिसका जनता से बस इतना सम्बन्ध था कि उस राज के काले करतूतों और अत्याचारों के सामने जनमानस में जो संवेदनहीनता पाई जाती थी, वह दूर हो और भावना के साथ-साथ उनमें अभिव्यक्ति का इतना साहस पैदा हो जाए कि वह अपने मुँह से अपने अन्तः करण की आवाज़ को ऊँचा कर सकें।

चौथा सवाल, राज का संविधान बदल दिया गया था, इसके माने ये है कि राज्य का कोई नियमित संविधान न था। अब देखने की ज़रूरत है कि राज्य के लिए यह संविधान 'वहि' के आधार पर था या मुसलमानों ने मनचाहे तरीक़े पर बनाया था, और यह विधान शुरु से

एक सा रहा था या उसके पहले भी उसमें बराबर बदलाव होता रहा था, और अगर उसमें बराबर बदलाव होता रहा था तो अब उस समय वह बदलाव विशेष क्या था जो असहनीय था? जब तक इन बातों की व्याख्या न हो, कर्बला से यह राजनैतिक लाभ उठाना कि राज्य के विधान की समस्या ऐसी भेंट चाहती है, जैसी हज़रत इमाम हुसैन ने कर्बला में प्रस्तुत की, इसकी मूल्यतयः कोई प्रौढ़ स्थिति नहीं थी।

पाँचवां सवाल राज का विधान बदल गया था, महामहिम इमाम इस परिस्थिति के सुधार के लिए उठे थे।

इस से सम्प्रदायिक भेद के बारे में यह नतीजा निकलता है कि उस से पहले जो राज विधान लागू था, उसे हज़रत इमाम हुसैन और उनके पहले वाले सही समझते थे जबकि वास्तव में रसूल हज़रत मुहम्मद[स०] के बाद सामाजिक प्रणाली का विधान बदल दिया गया था। इस बदलाव के नतीजे ने बराबर भेंट क़ुरबानियाँ दी जाती रही थीं। इसी से यह सच है कि इस क्रम की सबसे पहली क़ुरबानी इस्लाम की महान महिला, हज़रत फ़ातिमा ज़हरा[स०] की थी। हज़रत अली[अ०] का पूरा जीवन इस कुप्रणाली के विरूध संघर्ष में बीता। फिर इसकी कुप्रणाली के हानिकारक प्रभावों को सीमित करने की एक संभावित कोशिश थी जो हज़रत इमाम हसन[अ०] ने संधि के रूप में पूरी की थी। अब इसी कुप्रणाली के 'अत्याचार' का अन्त था जिसके टकराव में हज़रत इमाम हुसैन ने यह अन्तिम क़ुरबानी दी। इसने अपने दूरगामी प्राभावों से कुप्रणाली की सारी कठिनाइयों के असत्य होने पर अजय मुहर लगा दी।

सब से अन्त में छटी बात यह है कि आज सवा तेरह सौ बरस के बाद भी हज़रत इमाम हुसैन[अ०] के चरण की वजह बताते हुए लिखते हैं कि शरीयत (इस्लाम-विधान) में कोई बदलाव न हुआ था और समुदाय में इस्लाम धर्म से कोई विचलन न हुआ था। बस देश राज्य का विधान बदल गया था, इसलिए हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने ये क़दम उठाया, मगर ख़ुद हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने करबला से पहले और करबला में आशूर (दसवीं मुहर्रम) की अस्र (तीसरे पहर) तक कितने प्रवचन-व्याख्यान दिये, उनमें देखना चाहिए कि आपने अपनी कार्यप्रणाली को कभी भी उस राजनैतिक आधार पर टिका नहीं ठहराया? अगर ऐसा नहीं है और निश्चय ही ऐसा नहीं है, तो मानने पड़ेगा कि ये ग़लत फ़ायदा है जो कुछ आपात परिस्थितियों के आधार पर हुसैनी कारनामे से उठाया जा रहा है और वह किसी तरह वास्तविक सच्चाई के अनुसार नहीं है।

जनाब मौदूदी साहब कहते हैंः जिस विधान पर रसूल[स०] ने इस्लामी राज्य स्थापित किया था और जिस पर चार ख़लीफ़ा (जो राशिद याने सीधा रास्ता पाने वाले कहलाते थे) की राज्य-प्रणाली चलती रही उसका आधार यह थाः राज्य ख़ुदा का है, वही विधि देने वाला है, वही असल स्वामी और मालिक है और शासक जिसके हाथ में प्रबन्ध की बागडोर है, वह अल्लाह की राजसत्ता (शासकता) को स्थापित करने और उसकी विधि को लागू करने पर कृत्त है। राज्य का क़ानून इसलिए नहीं है कि शासक उसे जनता पर लागू करे बल्कि वह इसलिए है कि शासक और शासित, राजा और प्रजा दोनों पर लागू हो। उसका दूसरा सिद्धान्त यह था कि शासन जनमत से सत्ता पर आये, लोग उसको इस स्थिति में अपना शासक और राजपाल नियुक्त करें जबकि अभी वह सत्ता में नहीं आया है और उसके बाद उसकी बैअत करें, वह इस तरह से बैअत न ले कि सत्ता में आ जाए और फिर लोगों से वोट ले। ऐसी हालत में उसका विरोध कौन करेगा? और उसकी बैअत कौन न करेगा? खुली बात है कि सदाचारी, नेक और संयमी (मुत्तक़ी) और दायित्व भाव रखने वाला सत्ता को इस प्रकार लपक कर न लेगा।

बैअत के द्वारा सत्ता पर आना, एक चीज़ है और सत्ता पर आकर बैअत लेना दूसरी चीज़ है। हज़रत हुसैन[अ०] ने देखा कि गाड़ी की दिशा बदल गई है, अब पहले लोग सत्ता पर आये और फिर उन लोगों से बैअत ली।

ये सब कुछ एक सांस में मौलाना कह गये हैं। कितनी बातें चर्चा चाहती हैं, उस सबमें जो मानी हुई सच

बातें हैं वे इतनी है कि 'मुल्क/राज्य ख़ुदा का है, वही क़ानून देने वाला है, वही असल स्वामी मालिक है।

मगर इसका क्या मतलब है? क्या जो इसके बाद मौलाना ने कहा है, राज्य उसका है और असल मालिक स्वामी वह है, तो अब शासक जो इस क़ानून को लागू करने वाला है किसकी ओर से होना चाहिए? उसकी ओर से या जनता की ओर से जिनको क़ानून के द्वारा ठीक करना है। खुली बात है कि वह जनता चुनेगी तो अपने ही मतलब का चुनेगी। कभी भी ऐसा नहीं हो सकता, वह सच्चे मालिक स्वामी की इच्छा पूरी करे। इसके माने यह हैं कि मौलाना का पहला सिद्धान्त कि असल मालिक ख़ुदा है और राज्य उसका है और दूसरा सिद्धान्त कि शासक जनता की राय से सत्ता पर आये, दोनों आपस में टकरा रहे हैं।

अगर शासक को जनता की राय से सत्ता पर आना चाहिए तो फिर कहये कि राज्य जनता का है, असल में शासक जनता है जो आजकल के जनतंत्र का आधार है और अगर आप कहते हैं कि मुल्क ख़ुदा है और असल शासक ख़ुदा है तो फिर जिसके हाथ में राज की बागडोर होने का अधिकार है वह वही होगा जो उसकी ओर से नियुक्त किया हुआ हो। जनता को नियुक्ति का अधिकार देना ग़लत होगा।

आप कहते हैं किः

'लोग उसको इस हाल में अपना राजपाल और शासक नियुक्त करें, जबकि वह अभी सत्ता में न आया हो और इसके बाद उसकी बैअत करें, वह इस तरह लोगों से बैअत न ले कि सत्ता पर आ जाये और फिर लोगों से वोट ले।

बात तो सामने से सुन्दर है मगर क्या मौलाना बता सकेंगे कि हज़रत अली की ख़िलाफ़त को छोड़कर जो जनतंत्र के विचार बिन्दु से चौथी श्रेणी में मानी गई कि वह ऐसे में थी कि आप सामने से पहले सत्ता पर नहीं आये थे। पहले की दूसरी कोई भी ख़िलाफ़त क्या ऐसी है जिसमें यह शर्त मिले। हम तो यही देखते हैं कि हर जगह सत्ता किसी और तरह बना ली गयी फिर बाद में लोगों से बैअत ली गयी है यानी बीच के थोड़े से समय को छोड़कर यूँ ही बराबर गाड़ी चली है कि पहले लोग सत्ता में आ गये और फिर उन्होंने लोगों बैअत ली। अगर मौलाना ज़्यादा आगे देखने का कष्ट न भी करें तो ख़ुद यज़ीद के पहले अमीरे शाम (हज़रत मुआविया) को देख लें कि जिस समय से उनकी ख़िलाफ़त मानी जाती है वह उसके पहले से सत्ता में थे या नहीं?

अब अगर यह शर्त भी न मिले तो मौलाना का अन्तःकरण की आज़ादी और अभिव्यक्ति के साहस से काम लेकर साफ़ एलान करना चाहिए कि ख़ुद अमीरे शाम ही की ख़िलाफ़त ग़लत थी जिन्होंने यज़ीद को अपना युवराज/उत्तराधिकारी बनाया तो अब यज़ीद की ख़िलाफ़त के सही होने का सवाल ही कहाँ रह जाता है?

बेशक इसके बाद यह सवाल बेहल के रह जायेगा कि फिर यज़ीद के यहाँ क्या ख़ास बात थी जो हज़रत इमाम हुसैन[अ०] ने इतनी महान क़ुरबानी दी? मैं नहीं समझता कि मौलाना इस आधार के ग़लत साबित होने के बाद अब इसका क्या जवाब देंगे? मगर मेरे पास इसका यह जवाब है कि पहले की ऐसी ख़िलाफ़तों में भी धर्म के रक्षकों ने जो इस्लाम के सिद्धान्तों के संरक्षक थे, बैअत नहीं की थी, मगर इस काल से सत्ताधारी लोग उस अन्तिम चरण के लिए तैयार नहीं हुए, जिसके लिए यज़ीद तैयार हो गया और इसलिए इमाम हुसैन[अ०] को वही क़ुरबानी देना पड़ी जिसकी याद आदर्श रूप में अमर बनी हुई है।

इसके अलावा यह वास्तविक है कि पहले धर्मविधि का विरोध इतना खुलकर न हुआ था जिस तरह अब यज़ीद खुलकर काले करतूतों में लिप्त हो गया। इसलिए इस कहावत के अनुसार कि "अगर (ऊँट की) गद्‌दी को भारी देखा, यात्राधुन की आवाज़ तेज़ कर दो" उस समय इस्लामी समाज को जगाने के लिए एक ज़्यादा खुली क़ुरबानी देने की ज़रूरत थी जो उनके अन्तर्मन को झिंझोड़ दे।

इसलिए हुआ यह कि उस ग़लत सिस्टम के टकराव में क़ुरबानियों का सिलसिला तो रसूल[स०] के बाद

से चल पड़ा था लेकिन जितने असत्य सत्ता के उठाए पगों में कड़ाई हुई उतना-उतना उसके टकराव में सत्य के मिशन को तेज़ करने की ज़रूरत थी, यहाँ तक कि जब पानी सर से ऊँचा होकर यज़ीद के बिन्दु तक पहुँचा तो उसके मुक़ाबले में हुसैनी चरित्र के सामने आने की ज़रूरत पड़ी, जिसने वह पूरी कुरबानी सामने कर दी कि 'यज़ीदत्व' सदा के लिए कुनाम हो गया, फिर कभी साम्राज्य को यह साहस न हुआ कि धर्मविधि के प्रतिनिधि का सर अपने सामने झुकवाने की कोशिश करे।

आप कहते हैं: ''इस्लामी विधान का तीसरा आधार सलाह/परामर्श है''।

हमें इस बारे में ये मालूम करना है कि यह विधान संकलित रूप में कुरआन या हदीस में किस जगह अंकित है। बेशक एक जगह कुरआन में यह वाक्य है कि 'अपने कार्नो में आपस में सलाह करो' मगर वह तो आपस की बातों को जो खुद जनता को अपने बीच तय करना हैं, कहा जा रहा है कि, प्रभुसत्ता पर इसका पालन कब और कैसे ज़रूरी होता है।

आप कहते हैं कि- अल्लाह के रसूल (मुहम्मद साहब[स॰]) का यही चलन था।'' ऐसे में क्या आप पर सबूत देने का दायित्व नहीं आता कि आप यह दिखलायें कि हज़रत रसूल[स॰] ने कहाँ-कहाँ और कब 'सलाह' का पालन किया? क्या नमाज़ की रकअतें सलाह से तय हुईं? क्या रोज़ों की गिनती सलाह से तय हुई? क्या जिहाद के नियम सलाह से बने? फिर क्या हुदैबिया में समझौता सलाह के बाद किया गया? अगर सलाह के बाद किया गया होता तो उस पर जनसाधारण ही में नहीं विशिष्ट लोगों में भी वह बेचैनी क्यों होती जो लगातार तरीक़े से इतिहास और हदीस में अंकित है।

क्या उसामा की सेना के कूच का आदेश सलाह मशविरे से था? जबकि सहाबा और बहुत से बड़ों के मन के आदेश का न भाना इससे सामने आता है कि आप[स॰] बार-बार इसका हुक्म लगा रहे थे मगर किसी तरह इसका पालन नहीं हो रहा था जिस पर रसूल[स॰] को बहुत ही कड़े शब्दों में अपना आक्रोष जताने की नौबत आई। फिर क्या उसामा का नायक बनाना यह खुद क्या परामर्श सलाह पर आधारित था जबकि इस पर दूसरे लोगों के भड़क जाने के जताने के लिए हज़रत[स॰] के ये शब्द भी सुरक्षित हैं कि तुम लोगों ने इसके पहले उनके बाप (जनाब ज़ैद बिन हारसा) की सरदारी को पसन्द नहीं किया था, अब तुम उनकी सरदारी को पसन्द नहीं कर रहे हो। इस बारे में जब पहले ख़लीफ़ा ने खुद अपने राजकाल में सलाह मशविरे का पास कुछ न किया यहाँ तक कि आपके ये शब्द आये हैं कि अगर रसूल[स॰] की धर्मपत्नियों की टाँगें पकड़-पकड़ कर कुत्ते घसीटकर ले जायें तब भी मैं इस सेना को भेजे बिना न रहूँगा।

ख़ालिद बिन वलीद को हज़रत उमर के आग्रह पर भी निलम्बित न करना ऐसी कितनी बातें आपको दिखाई देंगी जिन में परामर्श सलाह न की गई बल्कि दूसरों की राय की अनदेखी की गई।

ऐसे ही हर राजकाल में आपको मिल जायेगा यहाँ तक कि जनाब उसमान का ख़िलाफ़त न छोड़ने पर हट, मरवान के मशविरों पर चलते रहने पर डटे रहना, राजयिकों के निलम्बल को न मानना ऐसी कितनी बातें हैं जिनमें मशविरा-परामर्श का कोई काम हमें नहीं दिखाई देता फिर जनाब मौदूदी साहब किसी तरह कह रहे हैं कि:

'इस्लामी विधान का तीसरा आधार मशविरा-परामर्श है।' बहरहाल इस बारे में जनाब मौदीद साहब का कहना बड़ा मोल रखता है कि 'जब स्वार्थी सत्ता पर हों और स्वार्थी ही परामर्श-मशविरा देने वाले, तो वह समुदाय के विरोध षडयंत्र ही करेंगे।

इसके साथ और इसमें यह भी बढ़ाने का साहस क़बूल हो कि जब स्वार्थी परामर्श करके किसी को सत्ता पर बनायें तो उसमें भी ज़्यादा सम्भावना यही है कि वे समुदाय के विरूद्ध षडयंत्र ही हो।

यही वह असल आधार है कि जिस पर यह षडयंत्री सिस्टम बनता है जिसके परिणाम में यज़ीद ऐसा व्यक्त सत्ता पर आया और जिसके विरोध में इमाम हुसैन[अ॰] को यह ऐतिहासिक कुरबानी देना पड़ी।

कर्बला के दुखित हुसैन[अ०]

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादक- मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

कौन है जिसने मुहर्रम में ''हुसैन-हुसैन'' की आवाज़ न सुनी होगी।

बहुधा आपने इस आवाज़ के साथ कुछ मनुष्यों को नंगे सर शोक संगीत पढ़ते एवं छाती पीटते भी देखा होगा तथा सम्भव है आपने रोने की आवाज़ें भी सुनी हों।

मानवीय सहानुभूति से विवश होकर अवश्य आपके हृदय से सहानुभूति के भाव जागृति हुये होंगे तथा आपने विचार किया होगा कि ये हुसैन कौन थे जिन पर आज तक अश्रुधारा प्रवाहित की जाती है।

कृपा करके थोड़ा सा समय देकर इस पत्रिका का अध्ययन करें तो आपको ज्ञात हो जायगा कि हुसैन कौन थे उनका ध्येय क्या था तथा उस ध्येय के वशीभूत होकर उन्होंने क्या किया तथा उसका क्या परिणाम हुआ।

''वंश एवं पैत्रिक विशेषताएं''

अरब देश में मक्के की भूमि पर बनी हाशिम का वंश उच्च स्थान रखता है। इस कुल में अब्दुल मुत्तलिब सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे उनके दो पुत्र थे अब्दुल्लाह और अबूतालिब। अब्दुल्लाह के पुत्र हज़रत मुहम्मद थे जो इस्लाम धर्म के संस्थापक एवं मुसलमानों के पैग़म्बर (दूत) हैं तथा अबूतालिब के पुत्र अली थे जो हज़रत मुहम्मद के सहायक एवं साथी थे जो मुहम्मद के बाद मुसलमानों के शासक एवं हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारी हुये। हज़रत मुहम्मद की एक पुत्री थीं फ़ातिमा जिनका वह अति सम्मान करते थे उन पुत्री का विवाह हज़रत मुहम्मद ने अली के साथ किया जिन्हें वह अपने सम्बन्धियों एवं मित्रों में सर्वाधिक प्रिय थे। अली और फ़ातिमा से दो पुत्र उत्पन्न हुये बड़े का नाम हसन था जो अली के बाद उनके उत्तराधिकारी हुये और छोटे का नाम हुसैन था जिनका नाम आप आज तक सुना करते हैं।

जन्म

हज़रत मुहम्मद अपने परिवार सहित मक्के की ज़मीन छोड़कर मदीने आये तथा यहीं बस गये। हिजरत इसी का नाम है इस हिजरत के तीसरे वर्ष हुसैन दुनिया में आये। आपके शुभ जन्म से आपके नाना हज़रत मुहम्मद, पिता अली, माता हज़रत फ़ातिमा सब अति आनन्दित हुये तथा परिवार में यह एक गौरवपूर्ण वृद्धि हो गयी।

बाल्यकाल

हुसैन 7 वर्ष की आयु तक अपने नाना हज़रत मुहम्मद की गोद में पले। हज़रत मुहम्मद को अपने इस छोटे नवासे से अति प्रेम था। ऐसी प्रसन्नता एवं आनन्द के दिन हुसैन को आजन्म प्राप्त न हुये।

नाना के बाद

हुसैन 7 वर्ष के थे जब उनके नाना हज़रत मुहम्मद का देहान्त हो गया। यह दुख समस्त परिवार-प्राणियों के लिये एक महान कष्ट था। हुसैन ने यह अनुभव किया कि वह उनके भाई एवं उनके माता-पिता लोगों की दृष्टि में वह आदर नहीं रखते जो इसके पूर्व था। उन्होंने यह भी देखा कि उनके पिता ने उस उच्च आदर्श के कारण जिसके हज़रत मुहम्मद पालनकर्ता थे, तथा मुसलमानों कों संगठित बनाये रखने के लिए समस्त अप्रिय परिस्थितयों का सामना धैर्यपूर्वक किया यहाँ तक कि कष्ट एवं दुख सहकर एक वर्ष के भीतर ही हुसैन की दयालु माता स्वर्गवासी हो गयीं। अली एकान्तवासी हो गये तथा हुसैन ने देखा कि धाम (काबा) की चहल-पहल जब सन्नाटे में

परिवर्तित हो गयी है।

25 वर्ष अली ने शांतिपूर्वक व्यतीत किये जब मुसलमानों ने तत्काली सम्राट (उसमान) को मार डाला तो वह अली के पास आए और कहा कि आप हमें मार्ग दर्शाइये। हज़रत अली ने बहुत अस्वीकार किया किन्तु अत्यन्त विवश करने पर हज़रत अली ने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर लिया किन्तु अभी थोड़ा ही समय बीता था कि आपके पुरातन शत्रुओं एवं उनके सम्बन्धियों तथा मित्रों ने आपका विरोध किया तथा आपको युद्ध करने पर बाध्य कर दिया यहाँ तक कि पाँच ही वर्ष पश्चात् आपको नमाज़ पढ़ते में शीश नवाते समय क़त्ल कर दिया।

अब उनके ज्येष्ठ पुत्र इमाम हसन उनके उत्तराधिकारी हुये किन्तु परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं कि आपको इस्लाम धर्म रक्षा के प्रति अपने पिता के शत्रु शाम के बाग़ी शासक माविया से समझौता करना पड़ा तथा तत्पश्चात् बिल्कुल एकान्तवासी जीवन व्यतीत करने पर भी शाम के शासक माविया की ओर से विष दे दिया गया।

आचरण एवं चरित्र

हुसैन ने अपनी उत्तम-प्राकृति के साथ-साथ ऐसी उच्च शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी जो उनके सद्आचरणों एवं उत्तम चरित्र का प्रतीक है फिर उनको विभिन्न परिस्थितयों एवं अवसरों का सामना करना पड़ा था जिनमें उनको भावनाओं के विपरीत अपने चरित्र के बल से काम लेना पड़ा था। यर्थाकारेण उनके चरित्र में बल, दृढ़ता एवं अडिग विश्वासादि गुणों का समन्वय हो गया था। वह दानी थे एवं मानव को लाभ पहुँचाने का यत्न करते थे। वह ज्ञानी ऐसे थे कि लोग धार्मिक कठिनाइयों को सुलझाने के लिए आते थे। वह दयावान थे ऐसे कि शत्रुओं पर भी समय पड़ने पर दया दृष्टि डालते थे एवं त्याग-भावना ऐसी थी कि अपनी आवश्यकता को त्याग कर दूसरों की आवश्यकताएं पूरी करते थे। क्या तुम ऐसे मनुष्य के चरित्र की उच्चता का अनुमान लगा सकते हो जिसने उस लश्कर (सेना) को जो स्वयं उससे युद्ध करने के लिए आया था प्यासा देखकर अरबी मरूभूमि एवं जलशून्य मार्गों में अपने साथ का सब पानी पिलवा दिया तथा अपने और अपने साथियों बल्कि स्त्रियों एवं बालकों तक का कोई विचार न किया। वह ऐसे उच्च चरित्रवान थे कि उन्होंने अपने संगठन की संख्या को स्थायी रखने के लिए भावी शंकाओं एवं अत्याचारों को गुप्त नहीं रखा बल्कि बार-बार भावी कष्टों एवं शंकाओं को अवश्यमेव बताकर उनको एवं प्राण-संरक्षण के प्रति अपने साथ से चले जाने की मंत्रण दी तथा यह सिद्धान्त (रीति) उस समय तक प्रयोग करते रहे जब तक कि किसी एक मानव के भी अशुद्ध विचार में ग्रस्त होने का भय था।

वह शांतिप्रिय एवं समझौता-प्रेमी भी ऐसे थे कि उन्होंने अन्तिम समय तक शत्रु से समझौता करने का स्वयं अपनी ओर से भरसक प्रयास किया किन्तु उसके साथ दृढ़ निश्चयी ऐसे थे एवं साहस ऐसा रखते थे कि प्राण दे दिये परन्तु जो पहले दिन सत्य समझकर धारण कर चुके थे उससे एक इन्च न हटे।

उन्होंने पुत्र होने के नाते पितृ-भक्ति की एवं लघु भ्राता होने के कारण भ्राता की आज्ञा-पालन किया इस प्रकार कि उनके इस कर्तव्य पालन में शिथिलता न आयी तथा फिर कर्बला में एक शासक के रूप में कर्बला की घटना में एक पूर्ण संगठन का व्यवस्थीकरण किया इस प्रकार कि उनके व्यवस्थीकरण का उदाहरण मिलना नितान्त दुष्कर है। उनकी दृष्टि ने व्यक्ति-परख का वह आश्चर्यजनक उदाहरण प्रस्तुत किया कि इतने कठिन एवं दुष्कर कार्य के लिए जिन साथियों का चुनाव करके अपने साथ ले लिया था उनमें से एक ने भी स्वामी-भक्ति एवं प्राणों की बाज़ी लगाने में कमी न की एवं सब एकत्र तथा एक हृदय होकर उनके ध्येय की पूर्ति में संलग्न रहे यहाँ तक कि प्राण दे दिये। यह दृश्य कुछ ऐसे आदर्शों एवं गुणों का पता दे रहे हैं जो हुसैन को मानव-संसार का एक आदर्श तथा उच्च उदाहरण सिद्ध करते हैं। हुसैन में आकर्षण-शक्ति केवल इस कारण नहीं है कि वह निरापराध क़त्ल हो गये एवं दुखी तथा निरापराधी के साथ सहानुभूति मानव-प्रकृति है बल्कि उनके गुण तथा विशेषताएं हैं जो उनकी जीवन घटनाओं से प्रकट है उनकी ओर समस्त मानव के हृदयों को मोड़ते हैं तथा प्रत्येक सचेत एवं सक्रिय मानव इस पर बाध्य है कि वह हुसैन का आदर दृष्टि से देखे तथा उनके गौरवपूर्ण व्यक्तित्व का

आदर व सम्मान करे।

सहनशीलता

पाठकगण आगे आने वाले दृश्यों से अशुद्ध परिणाम निकाल सकते हैं यदि वह हुसैन की युवावस्था आदि में उनकी सहशीलता पर विचार न कर लें। आप को ज्ञात है कि हुसैन को 7 वर्ष की आयु में कष्टों, कठिनाईयों एवं अत्याचारों का सामना करना पड़ा उनके पिता हज़रत अली के मुक़ाबले में अन्य व्यक्ति सशक्त हो गये तथा हज़रत अली ऐसे वीर एवं बलवान ने इस्लाम के हित के कारण धैर्य से काम लिया। यह समय 25 वर्ष तक रहा। इसी बीच इमाम हुसैन ने बाल्यकाल की सीमा पार करके नवयुवावस्था के दिन बिताकर पूर्ण युवक हो गये। मानव की आयु का यह वह समय होता है जिसमें उसकी भावनायें और इच्छायें अप्रशंसनीय कार्य प्रतिपादित करा देती हैं। परन्तु विरोधी वातावरण होने के बाद भी इमाम हुसैन ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया जो व्यवस्थीकरण तथा अपने पिता के द्वारा अपनाये हुये मार्ग के विपरीत हो बल्कि इतिहास के पृष्ठ साक्षी हैं कि जब तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान को घेरकर उन पर खाना पानी बंद कर दिया गया तो हज़रत अली ने अपने सुपुत्रों इमाम हसन और इमाम हुसैन को खाना और पानी हज़रत उसमान तक पहुँचाने के लिए भेजा था। हज़रत अली के शासन काल में विरोधियों की अत्याचारपूर्ण कार्यवाहियों के मुक़ाबले में इमाम हुसैन सम्मिलित रहे किन्तु जब सिफ़्फ़ीन के युद्ध में क़ुरआन नैज़ों (भाले के समान एक अस्त्र) पर ऊँचे किये गये और अपने साथियों के पारस्परिक विरोध से बाध्य होकर हज़रत अली को युद्ध स्थगित करने का निर्णय करना पड़ा तो युवक इमाम हुसैन ने निःसंकोच उसको स्वीकार कर लिया और अपने भाई इमाम हसन के साथ उस समझौते पर हस्ताक्षर किये जो युद्ध स्थगित करने के हेतु लिखा गया था। हज़रत अली शहीद हो गये और उनके स्थान पर इमाम हसन अधिष्ठाता स्वीकार किये गये तथा आपको अपने विरोधी से संधि करने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो इमाम ने भी उन शर्तों का पालन किया। दस वर्ष का समय यूँ ही गुज़र गया तथा उस काल में भी ऐसी घटनाएं घटित होती रहीं जो धैर्य का बन्धन तोड़ देतीं परन्तु इमाम हुसैन ने कोई क़दम नहीं उठाया यहाँ तक कि संसारिक बातों से बिल्कुल ही अलग हो गये और शांत रहे-- ऐसा व्यवहार होते हुए भी आपके ज्येष्ठ भ्राता इमाम हसन को विष द्वारा मार डाला गया और यह इतिहास की विचित्र घटना है कि उनको अपने नाना हज़रत मुहम्मद के पहलू में दफ़न न होने दिया गया बल्कि झगड़ा हो गया यहाँ तक कि शव पर तीर चलाये गये जिनमें से सात तीर तो ताबूत (वह बक्सा जिसमें शव रखा जाता है) तोड़कर हज़रत इमाम हसन के शरीर तक पहुँचे परन्तु भाई की वसीयत और अप्रिय परिस्थित को दृष्टि में रखते हुए आप शान्त ही रहे और अपने भाई को रसूल के रौज़े से अलग स्थान पर दफ़न कर दिया। इन घटनाओं से भलिभांति स्पष्ट है कि इमाम हुसैन कोई भावुक व्यक्ति न थे अपितु वह धीर और सहनशील थे तथा कभी क्रोध में आकर ऐसा कार्य न करते थे जो व्यवस्था, धैर्य और शांति के प्रतिकूल हो। कठिन से कठिन परिस्थितयों में भी शांतिपूण रहना आपका विशेष गुण था- यदि उस शांति रहने से उन बहूमूल्य उद्‌देश्यों को कोई हानि न पहुँचे जिनके वह स्वयं और उनके नाना, भाई और पिता संरक्षक रहे थे।

कर्बला की घटना के कारण

अब आपको अनुमान करना चाहिए कि ऐसा धीर, सहनशील, शांतिप्रिय तथा संधि प्रेमी व्यक्ति कैसे एक ऐसा क़दम उठा सकता है जिसमें उसके समस्त साथियों के गले कट जाने की पूर्ण आशा हो बिना असाधरण तथा विशेष कारणों के। फिर वह कारण क्या थे?

अच्छा सुनिये यह तो आपको ज्ञात ही है कि हुसैन हज़रत मुहम्मद के नवासे (दौहित्र) थे और हज़रत मुहम्मद उस धर्म के संस्थापक थे जिसका नाम है "इस्लाम"।

इस्लाम के पूर्व अरब की सामाजिक, आर्थिक तथा व्यावहारिक दशा जितनी अंधकारमय थी उसका आप इतिहास में अध्ययन कर सकते हैं। पारस्परिक समानता व एकता कोई वस्तु न थी और शक्ति, बाहुबल और अधिकार (उच्च-पद) ही सब कुछ था इसका एक प्रमाण यह भी है कि एक बड़े आदमी के क़त्ल हो जाने पर

केवल उसके क़त्ल करने वाले ही को न मार डाला जाता था बल्कि विरोधी पक्ष सैकड़ों व्यक्ति मृत्यु के बाद उतार दिये जाते थे तब समझा जाता था कि उसके ख़ून का बदला लिया गया। इसके विपरीत यदि कोई छोटा (दरिद्र) मनुष्य क़त्ल होता था तो उसका ख़ून माफ़ था।

यह बड़े और छोटे का अंतर अनेकों नैतिक पापों का स्त्रोत था और मानवता को कलंकित कर रहा था। इसका कारण यह था कि उन्होंने भौतिकवाद को ही सब कुछ समझ लिया था और उससे उच्च किसी ईश्वरीय सत्ता को होने का भाव शेष रह गया था। अतएव भौतिकता ही उनके दृष्टि में सब कुछ थी।

इस्लाम जो एक महत्वपूर्ण क्रांति लेकर आया था उसने सबसे पहले इसका मुख्य कारण दूर करते हुए लोगों की भौतिकता की सीमा से आगे निकल कर एक सार्वभौमिक शक्ति (अल्लाह) की ओर आकर्षित किया जिसके अनुसार समस्त मानव एक ही हैसियत रखते थे तथा फिर उसने पूर्वभूत के सभी ऊँच नीच के भेदभाव को मिटाकर नवीन आदर्श प्रस्तुत किया कि जो व्यक्ति मानवीय कर्त्तव्यों को सबसे अधिक प्रतिपादित करता है वह सर्वश्रेष्ठ है। इस आदर्श के अनुसार शक्ति, बाहुबल, अधिकार वंश और कुल की श्रेष्ठता तथा संख्या की अधिकता यह सब बातें मूल्यहीन हो गयीं। उसने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के सम्मान है जब तक कि मानवता के गुणों में अपने आपको उससे श्रेष्ठ सिद्ध न करे।

इससे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा व्यवहारिक दशाओं में महान् परिवर्तन हो गये इस्लाम ने इस क्रांति उत्पन्न करने में अत्याधिक सफ़लता प्राप्त की। बहुत से श्रेष्ठ कुलों के सदस्यों का विवाह किया गया उन वंशों में जो प्राचीन काल में तुच्छ समझे जाते थे। सम्भ्रान्त व्यक्ति के बदले में यह असम्भव हो गया कि एक से अधिक व्यक्ति क़त्ल किया जाये।

बहुत से परिवारों तथा विदेशी मनुष्यों जो इसके पूर्व पशुओं के समान समझे जाते थे उनको अपने मानवीय गुणों के कारण इतनी अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो बड़े-बड़े ख़ानदानी अरबों को न थी और बहुधा अरबों को सरदारी स्वीकार करना पड़ी उन लोगों की जिन्हें वे वंश के दृष्टिकोण से अपने बराबर न समझते थे अथवा शक्ति व बाहुबल के आधार पर शक्तिहीन समझते थे।

प्रत्येक क्रांति के बिल्कुल विपरीत एक दूसरी क्रांति भी प्रारम्भ हो जाती है जो क्रांति से उत्पन्न होने वाली विशेषताओं को मिटा देना चाहती है और पुरानी बातों की पूजा करना ही अपना ध्येय बनाती हैं।

इस्लाम को इस हैसियत से उन समस्त क़बीलों का सामना करना पड़ा जो इसके पूर्व अपने आपको शक्ति व बाहुबल का अधिकारी समझते थे। चाहे वह वंशीय श्रेष्ठता के कारण, चाहे वह धन-सम्पत्ति की अधिकता के कारण, चाहे सम्प्रदाय क़बीले की उच्चता के कारण।

हज़रम मुहम्मद को इस सम्बन्ध में कई युद्ध लड़ना पड़ें जिसमें उहद, बद्र, ख़न्दक़ के युद्ध अति प्रसिद्ध हैं। इनमें बनी उमय्या का सरदार अबुसुफ़यान बहुत आगे-आगे था और वह विरोधी संगठन का व्यवस्थापक था।

इन युद्धों में यद्यपि इस्लाम अनुयायियों की ही सफ़लता प्राप्त हुई परन्तु प्रत्येक सफलता विरोधी संगठन के हृदय में बदले की भावना और तीव्र कर देती थी यद्यपि प्रकट रूप में इस्लाम सबसे शक्तिशाली संगठन बन गया था परन्तु उसके विरोध में शत्रुता की भावनायें गुप्त रूप से अत्याधिक सुदृढ़ हो रही थीं यहाँ तक कि वह समय आया कि जब विरोधी पक्ष की पराजय ने उसे हथियार डालने पर बाध्य कर दिया तथा विरोधी संगठन के सदस्य यहाँ तक कि अबुसुफ़यान और उसके परिवार के व्यक्ति तक मुसलमान हो गये परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि दबी हुई और पराजित जातियों की कुछ भावनायें होती हैं। इस्लाम द्वारा पराजित हुआ संगठन अर्थात बनी उमय्या और उनके प्रशंसक जब मुसलमान हो गये तो उनकी मनो-वैज्ञानिक दशा यह थी कि वह सदैव उस अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे जिससे इस्लाम को हानि पहुँचायी जा सके और यदि उसका अन्त न कर सकें तो कम से कम उसके उद्देश्यों को परिवर्तित करके उन आदर्शों तथा विशेषताओं को मिटा दें जो उसने प्रस्तुत किये हैं एवं उसके परदे ही में सही, परन्तु उन

विशेषताओं को चालू कर दें जो इस्लाम के पूर्व अरब में प्रचलित थीं।

हज़रत मुहम्मद के जीवन-काल में उनके इस उद्देश्य की पूर्ति दुष्कर थी परन्तु हज़रत मुहम्मद के बाद उनको अपने उद्देश्यों में सफ़लता प्राप्त करने की पर्याप्त आशा थी।

हज़रत मुहम्मद के पश्चात् इस्लामी क्रांति के संरक्षक, पैग़म्बर के उत्तराधिकारी उनके घराने वाले वे व्यक्ति थे जिन्हें वह बराबर अपने कार्यों में सम्मिलित रखते थे तथा जिन्हें। उन्होंने अपने उद्देश्य से भली भांति परिचित करा दिया था एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार कर दी थी कि वह अपने कथनों तथा व्यवहारों से उन उद्देश्यों के प्रतीक बन सकें। इनमें और इसके विरोधी दूसरी क्रांति के प्रतिनिधियों में वैमनस्य अनिवार्य था और यह एक वास्तविकता है कि प्रत्येक बार परीक्षा (संघर्ष) के अवसर पर हज़रत मुहम्मद के वास्तविक उत्तराधिकारियों के साथी कम निकले और यह क्रम सदैव जारी रहा। इसके कारण आर्थिक भी हैं राजनीतिक भी, मनोवैज्ञानिक भी हैं और वंशीय भी।

आपको ज्ञात हो चुका है कि इस्लाम प्राचीन विशेषताओं को मिटाकर समानता का संदेश लेकर आया उसने श्रेष्ठाता केवल मानवीय कर्त्तव्यों के पूर्ण करने के आधार पर ही निश्चत की थी। धन-सम्पत्ति का इस प्रकार वितरण कि जिससे असमानता व भेदभाव उत्लन्न हो जाए इस्लाम के सिद्धान्तों के प्रतिकूल था तथा इसके (इस्लाम के) संरक्षक भी इसके निकट न जा सकते थे यथाकारेण हज़रत मुहम्म्द के सम्बन्धियों के लिए यह असम्भव था कि वह कोष में धन एकत्रित करके धनाठय बनें और विशेषतया उन लोगों को धन-धान्य से परिपूर्ण करें जिन से उनको अपने अधिपत्य को दृढ़ बनाने की आशा हो। यहाँ तो यह दशा थी हज़रत अली से उनके भाई अक़ील तक अप्रसन्न हो गए इस कारण कि वह चाहते थे कि उनको समस्त मुसलमानों से अधिक कुछ दिया जाए और हज़रत अली इसके लिए तैयार न हुए। फिर जब अपने भाई की यह दशा थी तो दूसरों का क्या वर्णन।

इसके प्रतिकूल दूसरे संगठन के व्यक्तियों को इसका ध्यान न था। वह अपने अधिपत्य को सुदृढ़ बनाने के लिए ख़ज़ाने के मुँह खोल देते थे और जिससे उनका उल्लू सीधा होता था उसको अत्याधिक धन सम्पत्ति प्रदान करते थे।

इसके अतिरिक्त इस्लाम ने उन समस्त प्रतिष्ठित सज्जनों और संगठनों की विशेषताओं को समाप्त कर दिया था जो इसके पूर्व मान्य व उच्च पदाधिकारी थे और एक बिल्कुल विभिन्न माप (स्टैण्डर्ड) निश्चत किया था। अतएव इस्लाम को मिटाने में प्रत्येक का अधिपत्य (अधिकार) स्थिर रह सकता था। फिर यह भी है कि पिछली पराजयों का सबके हृदय पर अमिट प्रभाव था तथा सब ही में बदला लेने की भावना पायी जाती थी और फिर यह बात भी थी कि रसूल के आदेशों के सभी संरक्षक एवं विशेष परिवार (बनी हाशिम) के व्यक्ति थे जिन से अनेक अरब परिवारों से पहले ही द्वेष व ईर्श्या थी अतएव ये वंशीय (पारिवारिक) द्वेष भी विरोध करने पर बाध्य करते थे।

बनी उमय्या का अधिपत्य मुसलमानों में एक सूबेदार शासक के रूप में प्रारंभ हुआ। शाम में माविया का राज्यपाल (गर्वनर) नियुक्ति किया जाना इसका श्री गणेश था। उन्होंने अपने शासन-काल के प्रारम्भ ही से अपनी राजनीतिक नीति राजसीय ठाट-बाट से परिपूर्ण रखी।

मुसलमानों के प्रमुख अधिपति की ओर से इस पर आलोचना की गयी तो एक चतुर राजनीतिक की भांति यह कहकर शान्त कर दिया गया कि क्योंकि शाम की सीमा रोम देश से मिली हुई है अतः यहाँ इस्लाम की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए इसी प्रकार की तड़क-भड़क की आवश्यकता है।

समझने वाले समझे कि इस प्रकार वास्तव में इसलाम की उस प्रतिष्ठा व विशेषता को मिटाना है जो उसने अत्यधिक प्रयत्न से सांसारिक तड़क-भड़क को मिटाकर स्थापित की थी इसमें उन्नति उस समय पूर्णतया हो गई जब इस्लाम का प्रमुख अधिपत्य भी तात्कालिक ख़लीफ़ा के रूप में बनी उमय्या के एक व्यक्ति को प्राप्त हो गया। आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से पूर्ण-रुपेण इस समय बनी उमय्या सशक्त हो गए थे और वह विशेषतायें पूर्णतया लुप्त होने लगीं जो इस्लाम के साधारण और दीन-पालक, नियमों ने स्थापित की थीं। इसका उदाहरण है अबूज़र ग़फ़ारी का देश से निकाला जाना,

अम्मारे यासिर और इब्ने मसऊद को यातनाएं पहुँचायीं जाना। यह भी ज्ञातव्य है कि यह वे लोग थे जो इस्लाम के प्रस्तुत किये गए सिद्धान्तों की सीमा में अति प्रतिष्ठित थे परन्तु इस शक्ति बाहुबल की सीमा में बिल्कुल ही अमान्य व अपमानित हो गए थे। इसके अर्थ यह थे कि इस्लामी क्रांति की अपेक्षा प्राचीन बातों की पूजा करने वाली क्रांति विजय प्राप्त करने लगी तथा इस्लाम की निश्चित सीमाओं के स्थान पर अन्य सीमाएं बना ली गयीं।

हज़रत अली की ख़िलाफ़त का थोड़ा समय पूर्णतया उमवी-अधिपत्य के मुक़ाबले में बीत गया जिसमें हज़रत अली की बहुत थोड़ी सफ़लता प्राप्त हुई।

हज़रत अली की मृत्यु (शहादत) के पश्चात् इस अधिपत्य में और भी वृद्धि हो गई यहाँ तक कि हज़रत इमाम हसन को संधि कर लेने पर बाध्य हो जाना पड़ा इस प्रकार आपने विरोधी शक्ति के हिंसात्मक व्यवहारों को समझौते की शर्तों द्वारा सीमित करने का प्रयास किया परन्तु इमाम हसन को विष द्वारा शहीद कर दिया गया तथा संधि की शर्तों का विरोध किया जाने लगा एवं राजनीतिक अधिमत्य इस साहस की सीमा तक पहुँचा कि हजर बिन अदी और उनके अनेकों साथियों जो अत्याधिक ईश-भक्त, संयमी एवं कर्तव्यपारायण थे तलवार द्वारा मार डाला गया तथा अम्र बिनलहुमक अलख़िज़ाई को जो इस्लामी दृष्टिकोण से उच्च स्थान रखते थे सर काट कर भाले पर ऊँचा उठाया गया। इसका परिणाम यह था कि इस्लाम के आध्यात्मिक व ईश्वरीय दृष्टिकोण का अन्त होने लगा तथा मुसलमानों में भी ''ईश्वरीय शक्ति है'' का व्यावहारिक कलमा पढ़ा जाने लगा। सत्य की पूजा समाप्त हुई। आत्मिक स्वतंत्रता अन्र्धान हो गई। धर्म और सत्य सुनहरे सिक्कों पर बेचे जाने लगे तथा भौतिक व नश्वर शक्ति की उपासना की जाने लगी।

यह दशाएं फिर भी सहन करने योग्य थीं यदि माविया की ओर से इस शर्त का विरोध न होता कि उनके बाद किसी उत्तराधिकारी के नामज़द करने का अधिकार न होगा।

इमाम हसन ने अत्यंत दूरदर्शिता से यह शर्त निश्चित की थी परन्तु उमवी राजनीति अपने उद्देश्य में असफ़ल रहती यदि इस शर्त का पालन किया जाता अतएव माविया ने अपने बाद के लिए अपने पुत्र यज़ीद को उत्तराधिकारी बनाया और केवल नामज़द नहीं किया अपितु समस्त इस्लामी संसार से भगीरथ प्रयास द्वारा यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने की स्वीकृति भी प्राप्त की गयी।

यज़ीद के कथन तथा व्यवहार (आचरण) यदि वह न भी होते जो इसके बाद संक्षेप में वर्णन किये जायेंगे तब भी उसको उत्तराधिकारी बनाना संधि-पत्र की शर्तों के प्रतिकूल होने के नाते अनुचित था किन्तु मुसलमानों में शक्ति व साम्राज्य से इतना भय उत्पन्न हो गया था कि किसी का ध्यान भी इस ओर न गया और यदि ध्यान जाता भी तो प्रकट करने का साहस न था।

हज़रत मुहम्मद के सम्बन्धियों में इस समय सर्वाधिक माननीय व्यक्ति हज़रत इमाम हुसैन थे। आप बनी उमय्या के व्यवहारों का दीर्धकाल से अनुभव कर रहे थे कि वह किस प्रकार इस्लाम के मूल-सिद्धान्तों के विरूद्ध हैं फिर भी उनको आशा थी कि शायद माविया के उपरान्त इस दशा में कुछ परिवर्तन हो जाए परन्तु यह उस क्रान्तिकारी राजनीति की अंतिम चाल थी कि राजाओं की भांति अपने बाद के लिए अपने पुत्र को बिना उसके चरित्र तथा आचरण को देखे हुए नामज़द कर दिया। आपने इसे पूर्णतया अनुभव किया और अनुमान किया कि आप का क्या कर्तव्य है।

माविया भी समझते थे कि इस मामले में सर्वाधिक सम्बन्धित व्यक्ति इमाम हुसैन हैं अतएव उन्होंने आपको मिलाने को अत्याधिक चेष्टा की परन्तु परिणाम स्वरूप असफ़लता ही मिली। यह बनी उमय्या पर गहरी चोट थी जिसे माविया की बुद्धिमता समझ चुकी थी। इसे इमाम हुसैन की सूझबूझ समझना चाहिए कि आपने अपने व्यवहार को शांति तक सीमित रखा। आप जानते थे कि विपक्षी इस शांति को भंग करने में अत्याधिक हिंसा व अत्याचार का प्रयोग करेगा जिसके लिये आप तैयार थे परन्तु आप यह न चाहते थे कि आपको किसी अत्याचारपूर्ण क़दम उठाने या बग़ावत करने को दोष दिया जाए।

माविया ने संसार को ख़ूब देखा था। वह हुसैन के इस मौन को अपनी पराजय समझकर व्याकुल थे किन्तु

वह जानते थे कि यदि हम कठोरता करेंगे तो वह इस पराजय का अन्तिम बिन्दु होगा अतः हुसैन चाहते थे कि मैं शांतिपूर्वक रहूँ और विरोधी अत्याचार करे और माविया का आश्य था हम अत्याचार न करें तथा हुसैन की शांति भी शेष न रहे।

स्मरणीय है कि कर्बला का युद्ध यहीं से प्रारम्भ होता है परन्तु यह एक अध्यात्मि वैमनत्य था जो न मालूम कब तक चालू रहता यदि माविया का प्राणान्त न हो जाता एवं नवयुवक अनुभवहीन, राज्य-शासन मिल जाने के कारण अत्याधिक घमंडी व अभिमानी यज़ीद राज्य सिंहासन पर बैठ न जाता।

हुसैन की बैअत (यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने) के प्रश्नसे पृथकता और शांति माविया को भी उतना ही कष्ट दे रही थी जितनी यज़ीद को परन्तु माविया को अत्याचार करने के परिणाम का ज्ञान था और यज़ीद को न था। यज़ीद ने हुसैन की शांति को शक्ति व साम्राज्य के बल से तोड़ना चाहा तथा बलपूर्वक आप से बैअत (स्वयं को ख़लीफ़ा मनवाने) की इच्छा की।

वलीद इब्ने अक़बा जो मदीने में उसका गर्वनर था उसे माविया की मृत्यु के समाचार के साथ ही यह आदेश भेजा कि शीघ्रतिशीघ्र इमाम हुसैन से मेरी बैअत ले लो यदि ऐसा न करें तो उनका शीश काटकर भेज दो। यह था वह प्रथम चरण अत्याचार व हिंसा का जो यज़ीद की ओर से उठाया गया यदि वलीद इस आदेश का पूर्णतया पालन करना चाहता तो मदीना ही कर्बला बन जाता। इमाम के सामने इस माँग का इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना मानो हुसैन की प्रथम सफ़लता और उमवी राजनीति की प्रारंभिक पराजय थी। उसने समझा था कि इमाम हुसैन का मुझको ख़लीफ़ा न मानना एक सामयिक बात है जो इस धमकी के कारण शीघ्र ही परिवर्तित हो जायेगी और हुसैन ने जो मार्ग ग्रहण किया वह सोच समझकर उसके समस्त अंतिम परिणामों का अनुमान कर लेने के बाद। वह देख रहे थे कि इस्लामी उद्देश्यों, विशेषताओं एवं सिद्धान्तों में अत्याधिक परिवर्तन हो गया है परन्तु इस पर भी अभी तक नाम-मात्र के इस्लाम का आवरण पड़ा हुआ है। अतएव जनसाधारण उसका उचित अनुमान नहीं लगा सकते। हुसैन चाहते थे कि विरोधी दल को हिंसा की अंतिम श्रेणियों पर पहुँचाकर उसको अमानवीय (पाशविक) भावनाओं को इस प्रकार प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान करें कि जनता को पूरी तरह अनुभव हो सके और आँखों के सामने से पर्दे हट जाएं।

इमाम हुसैन के लिए अपने उद्देश्य की प्राप्ति का इसके अतिरिक्त कोई और साधन न था।

यह तो सम्भव था कि वह अपने प्राणों की रक्षा कर लेते परन्तु यदि प्राणों का ही संरक्षण अभीष्ठ होता तो वह प्रारम्भ में ही यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने से इन्कार न करते। प्राणों का संरक्षण उनका दृष्टिकोण केवल उसी सीमा तक था जब तक कि उनके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की भी रक्षा हो परन्तु यदि उद्देश्य का सरंक्षण प्राण देने पर ही निर्भर हो तो उनके लिए प्राणों की आहुति देना अत्यंत सरल कार्य था।

उद्देश्य के सरंक्षण के केवल दो साधन हो सकते हैं एक विरोधी दल से निकलकर संधि की शर्तों के द्वारा, दूसरे युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करके। यह दोनों साधन इमाम हुसैन के लिए असम्भव थे। संधि इमाम हसन ने की थी और संधि की शर्तों का विरोध ही यह भयानक रूप धारण कर चुका था जो इमाम हुसैन के सामने थी यद्यपि माविया चरित्र के दृष्टिकोण से यज़ीद की अपेक्षाकृत अधिक उच्च स्तर के थे फिर जब माविया के साथ संधि में असफ़लता प्राप्त हुई तो यज़ीद के साथ संधि करने का परिणाम उससे भी अधिक भयानक ही होगा। जबकि यज़ीद के आचरण वह थे जो प्रकट रूप में भी इस्लामी सिद्धान्तों व उद्देश्यों के प्रतिकूल थे। वह नमाज़-रोज़े तक का पाबन्द नहीं था। शादी-ब्याह के बन्धनों (जो इस्लाम ने निश्चित किए थे) का भी पालन न करता था तथा इस्लाम ने जिन वस्तुओं को हराम कहा था जैसे शराब आदि उसका भी खुल्लम खुलल्ला प्रयोग करता था तथा उसके साथ इस्लामी ख़िलाफ़त का दावा था। इस दशा में यदि इमाम हुसैन भी जो कि इस्लामी सभ्यता व संस्कृति के रक्षक थे, यज़ीद की बैअत कर लेते तो स्मरण रखना चाहिए कि इस्लाम की सभ्यता व संस्कृति तथा सामाजिक सिद्धान्त स्थायी रूप से वही बन जाते

जिस ओर बनी उमय्या की राजनीति लिये जा रही थी तथा जिसका यज़ीद अपने समय में उत्कृष्ठ उदाहरण था।

कहने वाले कह सकते हैं कि इमाम हुसैन के बाद भी तो बहुत से मुस्लिम-राजे उन्हीं आचरणों में ग्रस्त हुए हैं जिनमें यज़ीद ग्रस्त था। परन्तु स्मरणीय है कि हुसैन के बलिदान ने इस्लाम की सभ्यता व सिद्धान्त को इतना जागृति कर दिया कि अब उसके ख़िलाफ़ जो आचरण तथा कार्य होते हैं वे बिल्कुल व्यक्तिगत दोषों की हैसियत रखते हैं तथा उनका कोई मानसिक प्रभाव समाज या संगठन पर नहीं पड़ता। ख़तरा अब सदैव के लिए दूर हो गया है कि इस्लाम का स्थायी सिद्धान्त और व्यावहारिक नियम समझ लिया जाए क्योंकि हुसैन और उनके साथियों ने इस्लाम के वास्तविक रूप का कर्बला में न मिटने वाला उदाहरण प्रस्तुत कर दिया तथा उसकी धार्मिक महत्ता को भली भांति स्पष्ट कर दिया है। अब यदि इस्लाम को कलंकित करने के लिए बनी उमय्या व बनी अब्बास का उदाहरण दिया जाए जो तत्काल ही इस्लाम की ओर से सफ़ाई देने के लिए हुसैन का बलिदान इतिहास के पृष्ठों पर सामने आ जाता है।

यज़ीद और इमाम हुसैन के उद्देश्य बिल्कुल तत्सम और विपरीत थे। यज़ीद अज्ञानता के युग के पलटाने का सूरमा और हुसैन आध्यामिकता तथा मानवता को स्थिर रखने के उत्तरदायी। वह शक्ति व साम्राज्य का सिक्का चलाने में प्रयत्नशील और हुसैन धर्म-प्रचार में संलग्न, वह इस्लामी विशेषताओं को मिटाने पर तुला हुआ और हुसैन इस्लामी विशेषताओं को स्थिर बनाये रखने पर कमर कसे हुए।

फिर भला बतलाइये कि इमाम हुसैन और यज़ीद में संधि क्योंकर हो सकती थी।

दूसरा ढंग यह था कि आप शक्ति का मुक़ाबला शक्ति से करते तथा विजय प्राप्त करके यज़ीद को परास्त करते परन्तु आपको ज्ञात हो चुका है कि शक्ति प्रतियोगिता में हज़रत मुहम्मद के सम्बन्धियों के साथी सदैव कम ही होते थे। इस प्रकार का अनुभव पूर्णरूपेण हज़रत अली और इमाम हसन के समय में हो चुका था।

फिर संसार की सोचने-विचारने की शक्ति इतनी लुप्त हो चुकी थी कि यदि आप सेना एकत्रित करके युद्ध भी करते तो जो उसकी वास्तविक हैसियत थी उसके समझने वाले बहुत कम होते और यह समझने वाले अत्याधिक होते कि यह राज्य सिंहासन प्राप्त करने के उद्‌देश्य से दो राजाओं का युद्ध है तथा राजनीतिक दृष्टिकोण यज़ीद का पल्ला भारी रहता यदि इस प्रकार से इमाम हुसैन को विजय प्राप्त भी होती (जो प्रकट रूप से असम्भव थी) तो उसका प्रभाव एक सामयिक राजसीय क्रांति के रूप में होता जिसका प्रभाव दीर्धकालीन न होता तथा बनी उमय्या पर जो बाध्य इस्लाम का परदा था वह अब भी उसी प्रकार पड़ा रहता जैसे इसके पूर्व था और यदि कुछ लोग हुसैन को सत्य (हक़) पर समझते भी होते तो विरोधी दल को खताये इज्तेहादी (सत्य की खोज करने में त्रुटि) का प्रमाण पत्र दे देते जैसा कि इसके पूर्व सिफ़्फ़ीन के युद्ध में हुआ। इस प्रकार बनी उमैय्या की आंतरिक भावनाओं का इस सीमा तक अन्वेषण कि जो उनसे सहानुभूति का कोई पहलू मानवता के हृदय में बाक़ी न रखे कदापि नहीं हो सकता था जब तक कि उनसे अत्याधिक घृणा उत्पन्न न होती उस समय तक उन विशेषताओं की पूर्णतिया पराजय न हो सकती थी जिसे बनी उमय्या ने व्यावहारिक रूप से स्थापित करना चाहा था।

ज्ञात हुआ कि संधि करना भी असंभव था तथा युद्ध करना भी। फिर अब तृतीय मार्ग कौन सा था? वही जिसे हुसैन ने अपनाया और यदि हुसैन न अपनाते तो उसका अनुमान करना भी हमारे लिए असंभव था।

आपने साम्राज्य का मुक़ाबला असहाय से कसरत (अधिक्य) का मुक़ाबला ऐक्य से था अत्याचार का मुक़ाबला सहनशीलता से किया तथा यह वह युद्ध का ढंग था। जो इससे पूर्व संसार ने नहीं देखा था। आपकी दृष्टि में विजय और परास्त का अर्थ बिल्कुल भिन्न था। विजय का अभिप्राय यह न था कि आप शत्रु की सेनाओं को रौंदकर उसके देश पर अधिकार प्राप्त कर लें तथा पराजय का यह तात्पर्य न था कि आपके सब साथी मार डाले जाएं और स्वयं भी क़त्ल हो जाएं।

आपके अनुसार विजय के यह अर्थ थे कि कहाँ

तक आप अपने सिद्धान्त के समर्थन में कठिनाइयों का मुक़ाबला करते हैं और कहाँ तक आपका शत्रु अपने उद्देश्यों के संरक्षण में हिंसा से काम लेता है। शत्रु की हिंसा का प्रत्येक चरण एक मोर्चा था जिसे हुसैन विजय करते थे तथा उसका अत्याधिक हिंसात्मक चरण हुसैन के अपने उद्देश्य के अनुसार पूर्ण विजय थी।

इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हुसैन ने अत्यन्त प्रबन्ध किया था। शक्ति का मुक़ाबला शक्ति से करना होता तो सेना की संख्या में वृद्धि करते उन्होंने ऐसा नहीं किया। संख्या को यथासम्भव कम से कम किया परन्तु उन्होंने अपने साथ ऐसे-ऐसे ईशे-भक्त, संयमी, पवित्र तथा चरित्रवान व्यक्तियों को लिया जिनकी ईश-भक्ति, संयमता एवं चरित्र की उच्चता व पराकाष्ठा की सम्पूर्ण देश में विशेष ख्याति थी। उन्होंने ऐसे वयोवृद्ध अपने साथ लिये जिनकी भौहें लटक कर आँखों तक आ गई थीं तथा उन्होंने ऐसे युवक अपने साथ लिये जिनके यौवन व सुन्दरता का उदाहरण न था, कुछ ऐसे बालक भी साथ लिये जिनके हाथों में तलवार उठाने की शक्ति न थी बल्कि दूध पीते बच्चे को भी अपने साथ लिया और पर्दानशीन (पर्दे वाली) महिलाओं को जो हज़रत मुहम्मद के परिवार से सम्बन्धित थीं तथा जिनमें हज़रत मुहम्मद की नवासियाँ भी मौजूद थीं अपने साथ लिया।

तुम इस प्रबन्ध से समझ सकते हो कि हुसैन का उद्देश्य क्या था और वह किस प्रकार अपने विरोधी से युद्ध करना चाहते थे। याद रक्खें कि हुसैन के पास यह वो मशीन गन थी जिनको इमाम हुसैन बनी उमय्या के हिंसा रूपी भवन को नष्ट करने का अत्यन्त शक्तिशाली साधन समझते थे और निःसंदेह उनका विचार उचित था। इमाम हुसैन के हेतु श्रेष्ठतम मार्ग यही था और इसके अतिरिक्त कोई अन्य साधन न था।

मदीने से प्रस्थान

इमाम हुसैन ने बैअत की याचना को सुनकर पहला क़दम यह उठाया कि मदीने को छोड़ दिया इसमें शांति-प्रियता के प्रमाण के साथ-साथ अपने उद्देश्यों के प्रचार का पहलू भी निहित था। यदि आप मदीने में शहीद हो जाते तो विरोधी दल की ओर से इस पर अनेकों प्रकार से आवरण डाल दिये जाते और जिस प्रकार इमाम हसन का क़त्ल आज तक सन्देहात्मक है उसी प्रकार इमाम हुसैन की शहादत भी छुपी रहती तथा बलिदान का बह उद्देश्य प्राप्त न होता जो इमाम हुसैन के सामने था।

मक्के में शरण

आपने मदीने से निकलकर ईश-धाम (काबे) में शरण ली। बाह्य रूप में यह केवल अपनी रक्षा करने का एक ढंग था परन्तु इसमें एक रहस्य यह भी था कि मक्का समस्त अरब देशों के निवासियों के एकत्रित होने का स्थान था। इमाम का मक्के में निवास करना लोगों को इस प्रश्न पर बाध्य करता था कि किन कारणों से हज़रत मुहम्मद के दौहिन्न ने नाना की समाधि छोड़ी है।

इस रूप में यज़ीद के साथ आपके शांतिपूर्ण विरोध और उसके कारणों की घोषणा पूरे देश में हो गयी तथा उन अशुद्ध विचारों का अन्त हो गया जो इस सम्बन्ध में फैलाई जा सकती थीं।

मक्के से रवानगी (प्रस्थान)

आप का मक्के से प्रस्थान बिल्कुल असम्भावित परिस्थितयों में हुआ था। एक ऐसे अवसर पर जबकि हज के केवल दो दिन शेष रह गए थे और दूर-दूर से लोग सिमट-सिमट कर मक्के में एकत्रित हो रहे थे ऐसे अवसर पर आपका हज न करके मक्के से रवाना हो जाना असाधारण परिथितयों का ही परिणाम हो सकता था। आपको सन्देह था कि आप की उपस्थिति में मक्के की पवित्र भूमि पर क़त्ल न हो जाए। आपने ईश्वरीय धाम के सम्मान पर अपने शांतिपूर्ण जीवन को बलिदान कर दिया।

क्या आपका इस असम्भावित रूप से प्रस्थान मक्का के विभिन्न क़बीलों की समूह में नितांत अनुभव उत्पन्न होने का कारण न हुआ होगा?

उस अवसर पर जब कि समाचार पहुँचाने के साधन न थे इमाम ने अपने इस व्यवहार से इस्लामी संसार को परिचित कराने के वे साधन उपलब्ध किये जिन से बढ़कर कोई साधन सम्भव न था।

कर्बला में प्रवेश

इमाम हुसैन को कूफ़े के निवासी धर्म मार्ग प्रदर्शित कराने हेतु बहुत समय से बुला रहे थे। जब आपका मक्के से प्रस्थान करना अनिवार्य हो गया तो कूफ़े की ओर रवाना हुए परन्तु इस बीच कूफ़े में भारी

परिवर्तन हो चुका था और यज़ीद की आज्ञा से इब्ने ज़ियाद का शासन स्थापित हो गया था जिसने कूफ़े के चारों ओर फौजें (सेनाएं) एकत्रित करा दी थीं। अभी इमाम रास्ते ही में थे कि कूफ़े की सेना आकर रोड़ा बन गयी और आपको आगे बढ़ने या वापस जाने से रोका विवश होकर आप कर्बला नामक स्थान पर उतर पड़े। यह वही गौरवमयी पुण्य भूमि (कर्बला) है जो उस अद्वितीय बलिदान की केन्द्र निश्चित हुई, जो ''कर्बला की घटना'' नाम से आज सुविख्यात है।

कर्बला पहुँचने के बाद

इब्ने ज़ियाद को ज्ञात हुआ कि इमाम हुसैन कर्बला पहुँच गए हैं तो उसने सेनाएं भेजना प्रारम्भ किया और इतनी अधिक फ़ौजें कि विस्तृत जंगल व्यक्तियों के आधिक्य से परिपूर्ण दृष्टिगोचर होने लगा।

समझ लीजिए कि कूफ़े की सम्पूर्ण युद्ध करने योग्य जनसंख्या कर्बला में सिमट आयी थी। उमरे साद इस सेना का नायक था।

शांति स्थापित करने का प्रयास और उसमें असफ़लता

इमाम हुसैन ने प्रयत्न किया कि किसी प्रकार युद्ध छिड़ने की स्थित न आए और शांति भंग न हो। इसी उद्देश्य से उमरे साद के साथ पत्र-व्यवहार से सम्पर्क स्थापित किया और बात इस पर समाप्त हुई जाती थी कि आप इराक़ में न रहेंगे तथा यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो अरब का देश भी त्याग देंगे एंव किसी दूर स्थान पर चले जाएंगे।

ध्यान दीजिए तो इस प्रकार भी हुसैन की ही विजय थी अर्थात आपका देश त्याग भी उसी उद्देश्य की एक घोषणा थी जिसके लिए आप को प्राणों की आहुति देनी पड़ी। क्योंकि धार्मिक एवं वैद्यानिक दृष्टिकोण से जब तक उद्देश्यों का संरक्षण प्राणों का बलिदान दिये बिना हो सके तब तक ऐसा करना आत्म हत्या ही है अतएव आप दूसरे साधनों की खोज कर रहे थे।

उमरे साद ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था और उसने इब्ने ज़ियाद को लिखा था कि अल्लाह की कृपा से लड़ाई-झगड़ा समाप्त हो गया। हुसैन इस बात को मानते हैं कि वह जहाँ से आए हैं वहीं वापस चले जाएं अथवा देश को छोड़ दें। परन्तु इब्ने ज़ियाद जिसे हज़रत मुहम्मद के सम्बन्धियों से अत्यन्त शत्रुता थी कुछ झगड़ा-प्रेमी दुष्टों के समझाने के कारण इस पर तैयार न हुआ और इसी पर अड़ा रहा कि हुसैन, यज़ीद को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार कर लें तभी उनके प्राणों का संरक्षण हो सकता है। यह वह बात थी जिसे इमाम हुसैन पहले से तय कर चुके थे कि असम्भव है।

उन्हें बैअत करना होती तो पहले दिन ही क्यों न कर लेते अब मृत्यु को सामने देखकर वह इस बात पर तैयार हो जाते तो वह एक मध्यम श्रेणी के व्यक्ति सिद्ध होते और वह हुसैन न होते कोई अन्य व्यक्ति हो सकता था।

वास्तव में इमाम हुसैन और यज़ीद के मध्य जो खाईं थी वह व्यक्तिगत या निजी नहीं अपितु इस्लामी और सामूहिक थी।

यह तो दैवयोग की बात थी कि मुक़ाबले में बनी उमय्या के वंश का एक व्यक्ति यज़ीद था। नहीं वे बनी उमय्या न होते कोई और क़बीला होता बल्कि बनी हाशिम के परिवार का ही कोई व्यक्ति होता परन्तु यदि वह उन उद्देश्यों का विरोध करता जिसके इमाम हुसैन संरक्षक थे तो आप उसके मुक़ाबले में यूँ ही खड़े हो जाते जिस प्रकार यज़ीद के मुक़ाबले पर खड़े हो गए।

इमाम हुसैन का उद्देश्य

प्रत्येक युद्ध के कुछ न कुछ कारण व उद्देश्य होते हैं। इमाम हुसैन के उद्देश्य बहुत सीमा तक उनके आचरणों एवं व्यवहारों से प्रकट हैं जिन पर किसी हद तक इसके पूर्व प्रकाश डाला गया है इसके अतिरिक्त आपके कथन जो विभिन्न भाषणों के रूप में हम तक पहुँचे हैं आपके उद्देश्यों की व्याख्या करते हैं।

शोक का विषय है कि इतिहास ने उन समस्त भाषणों को सुरक्षित व एकत्रित नहीं किया जो आप ने विभिन्न अवसरों पर दिये हैं परन्तु जहाँ तक सुरक्षित हो सके हैं वह किसी सीमा तक इस सम्बन्ध में हमारे लिए पर्याप्त हैं।

सर्वप्रथम उस समय जब वलीद ने आपके सामने यज़ीद की बैअत करने का प्रस्ताव रखा है आप ने चाहा कि बात टल जाए (सामयिक रूप में) परन्तु मरवान नामक व्यक्ति के बुरी तरह हस्तक्षेप के कारण आप

क्रोधित हो गए। आपने वलीद को सम्बोधित कर के कहा ''हम हज़रत मुहम्मद के सम्बन्धी हैं और उनके ख़ज़ाने। मानव की विशेषताओं तथा गुणों का हम से प्रारम्भ तथा हम ही पर अन्त है। यज़ीद कुकर्मी, दुष्ट मदिरा-पान करने वाला, निरापराधियों को क़त्ल करवाने वाला तथा प्रकट रूप से पाप करने वाला है- मेरा ऐसा व्यक्ति उसकी बैअत नहीं कर सकता।''

इसमें अपने उत्तरदायित्वों को बतलाते हुए आपने अपने और यज़ीद के मध्य विरोध के कारणों पर पूर्णतया स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। आपके व्यवहार अपनी अंतिम साँस तक इसी कथन की व्याख्या हैं और बस।

कर्बला में उमर बिने साद से आप ने कहा ''अल्लाह की सौगंध मैं अपमानित दशा में अपने को तुम्हारे अधिकार में न दे दूँगा और न गुलामों की भांति तुम्हारे सामने से भागूँगा।''

यह थी वीरता और कर्तव्यपारायणता की मृत्यु की घोषणा। इसी को एक दूसरे स्थान पर शाम-निवासियों को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा।

''ऐ अल्लाह के बन्दों मैं पनाह माँगता हूँ ऐसे व्यक्ति से जो घमंड और अभिमान करता है तथा प्रलय के दिन पर विश्वास न करता हो। मृत्यु आदर के साथ श्रयेस्कर है उस जीवन से जो अपमान के साथ हो।''

पहले वाक्य में झगड़ा प्रेमी व दुष्ट चरित्र यज़ीद की निंदा है और दूसरे वाक्य में इसकी व्याख्या है कि भौतिक शक्ति के आगे उच्च उद्देश्यों के विरूद्ध शीश नवा देना मानव की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है तथा उस जीवन से जो इस प्रकार हो मृत्यु श्रेष्ठ है।

इसी को दूसरे शब्दों में यूँ कहा है कि मृत्यु अपमान व अनादर से श्रेष्ठ है। 9 मोहर्रम की रत्रि के भाषण में अपने साथियों को सम्बोधित करके कहा ''मैं ससम्मान मृत्यु को जीवन समझता हूँ और अपमानित जीवन को मृत्यु समझता हूँ।

युद्ध का पूर्ण निश्चय

नौ मोहर्रम को इब्ने ज़ियाद का पत्र उमरे साद के पास आया जिस ने संधि को असम्भव बना दिया था बैअत या क़त्ल और यह बात उमरे साद भी जानता था कि बैअत करना इमाम हुसैन के लिए असम्भव है अतएव उसके पास अब युद्ध के अतिरिक्त कोई अन्य साधन न था। यथाकारेण उसने तत्काल ही हुसैन की सेना पर आक्रमण कर दिया।

इमाम ने इस असम्भावित आक्रमण का किसी प्रकार की व्याकुलता से स्वागत नहीं किया बल्कि बहुत नम्रतापूर्वक आपने अपने भाई अब्बास को भेजकर हमले का कारण पूछा और यह ज्ञात होने पर कि इब्ने ज़ियाद का आदेश युद्ध करने के लिए आ गया है- आप ने केवल एक रात तक युद्ध स्थगित करने की माँग की।

अज्ञानी व्यक्ति एक रात तक युद्ध स्थगित रखने को इमाम हुसैन की कमज़ोरी समझ रहे होंगे परन्तु जिसने हुसैन के जीवन चरित्र का अध्ययन किया है वह इसका विचार भी असम्भव समझता है।

एक रात तक युद्ध स्थगित रखने में एक रहस्य यह निहित था कि आप मृत्यु की पूर्ण आशा हो जाने के बाद अपने साथियों को अपने विचारों को तोल लेने का अवसर प्रदान कर दें और एक बार पुनः यह कह दें कि जो साथ छोड़कर चला जाना चाहे वह जाए। यथाकारेण आपने उस रत्रि को समूह की संख्या में ह्रास करने का यत्न किया तथा लोगों को सोचने विचारने का पूर्ण अवसर दिया। अब जो लोग इमाम हुसैन के साथ रह गए थे वे मृत्यु को अवश्यमेव समझते हुए पूर्णतया इस पर तैयार थे अतएव उनमें नाम-मात्र को भी कमज़ोरी न थी दूसरे यह कि विरोधी दल को भी एक रात्रि का अवसर धर्म व अधर्म, सत्य व असत्य की तुलना के लिए दिया तथा इसी रात्रि तक युद्ध स्थगित रखने का परिणाम था कि उमरे साद की सेना का एक बड़ा अफ़सर हुर बिन यज़ीद रियाही जो सर्वप्रथम हुसैन को घेर कर कर्बला लाने का उत्तरदायी था उमरे साद की सेना से अलग होकर इमाम हुसैन की ओर आ गया और आपकी सहायता में प्राणों की आहुति दी।

स्मरण रखिये कि एक सत्य की ओर बुलाने वाले की यह महान सफ़लता है यदि वह एक व्यक्ति को भी अंधकार से निकालकर प्रकाश में ले आए और याद रखिये कि हुसैन के सिद्धान्त की यह एक बड़ी सफ़लता केवल उस रात तक युद्ध स्थगित रखने का परिणाम थी जो शत्रु से मांग कर प्राप्त की गई थी।

दस मोहर्रम का प्रातःकाल

रात गई और दस मुहर्रम का प्रातःकाल हुआ उमरे साद ने रणक्षेत्र में अपनी सेना को पंक्तिबद्ध किया और हुसैन ने भी अपनी छोटी सी सेना का व्यवस्थीकरण किया उस समय आपने आवश्यकता अनुभव की कि विरोधी दल को अपनी निरापराधता पर अंतिम बार सचेत कर दें तथा उस विशाल सेना को अपने उद्देश्यों से फिर परिचित करा दें कहीं ऐसा न हो कि अज्ञानता में कोई व्यक्ति इस महापाप में ग्रस्त हो जाए और उसका उत्तरदायित्व आप पर रहे।

आप एक ऊँट पर सवार हुए और सेना के सामने जाकर एक प्रभावोत्पादक एवं भावपूर्ण भाषण दिया जिसमें अपने कुल (वंश) की विशेषताओं, अल्लाह के साथ अपने सम्बन्ध, अपनी चरित्रिक व नैतिक शुद्धता, कुकर्मों से पृथकता, और हज़रत मुहम्मद के कथन जो आपके बारे में मुसलमानों के बीच सही (उचित) माने जाते हैं उनको एक-एक करके प्रस्तुत किया और फिर पूछा इस दशा में किस कारण तुम मुझको क़त्ल करना श्रेयस्कर समझते हो।

सेना के लोग जो उच्च्व पद मिल जाने की लालसा के दास बने हुए थे इससे क्या प्रभावित होते परन्तु आपने अपना कर्तव्य निभाया और दिखा दिया कि एक शांति स्थापित कराने वाला कभी भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होता।

युद्ध का आरम्भ

सर्वप्रथम उमरे साद ने एक बाण हुसैनी सेना की ओर फेंका और कहा गवाह रहना कि सबसे पहला तीर मैंने फेंका है उसी के साथ हज़ारों तीर फेंके गए- यह था युद्ध का संदेश। हुसैन इसके लिए पहले से तैयार थे उन्होंने अपने वीरों को अवाज़ दी कि हाँ सेनानियों। खड़े हो जाओ। शत्रुओं के तीर तुम्हारी ओर युद्ध का संदेश लेकर आ गए।

क्या चित्र खींचा जा सकता है उस अवसर का जब एक ओर हज़ारों व्यक्तियों का समूह हो और दूसरी ओर थोड़े से भूखे-प्यासे मनुष्य हों जिनमे मुश्किल से लड़ने के योग्य सौ व्यक्ति होंगे वरन् शेष तो कम आयु वाले बच्चे थे, अधिक आयु वाले वृद्ध थे परन्तु उन्होंने इस प्रकार युद्ध किया कि इतिहास के पृष्ठ पर उसका वर्णन स्वर्णक्षरों में अंकित है।

वह मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु उनकी शूरता और वीरता की याद आज तक जीवित है और सदैव जीवित रहेगी।

साथियों का अंत (क़त्ल)

सर्वप्रथम हुसैन के मित्र और साथी जो आप से ख़ानदानी सम्बन्ध न रखते थे वह एक-एक करके रणक्षेत्र में गए और शहीद हुए।

यह एक आश्चर्यजनक व्यवस्थीकरण था जो इस कठिन व्याकुलता से परिपूर्ण अवसर पर अत्याधिक दृढ़ता से स्थापित किया गया था कि जब तक साथियों में से एक भी जीवित रहा हुसैन का कोई सम्बन्धी रण-क्षेत्र में न जाने पाया और इसके बावजूद कि तीरों का मेंह बरसता तथा घमासान का युद्ध हुआ। फिर भी आपके किसी सम्बन्धी के घाव तक न लगने पाया।

नवयुवक पुत्र की शहादत

सम्बन्धियों में सर्वप्रथम इमाम हुसैन ने अपने नवयुवक पुत्र अली अकबर को रणक्षेत्र में भेजा। उनकी माता लैला शिविर में थीं और पिता शिविर के द्वार पर तथा उनका पुत्र शत्रुओं की सेना में छुपा था।

पिता ने देखा और माता से सुन लिया कि अली अकबर तलवारों से टुकड़े-टुकड़े हो गए परन्तु धैर्य धारण किये रहे। वह इस बलिदान के लिये पहले से तैयार थे। वह यह समझ कर संतुष्ट थे कि उनकी स्कीम का एक अंश पूर्ण हुआ।

"भांजों, भतीजों और दूसरे सम्बन्धियों की शहादत अक़ील के पुत्र, जाफ़र के बेटे और सबसे अधिक हुसैन के दयालु भाई इमाम हसन की औलाद एक के बाद एक इमाम हुसैन के सामने क़त्ल होते रहे। इनमें से अपने भाई के अव्यसक पुत्र हज़रत क़ासिम को रणक्षेत्र में जाकर शहीद होने की आज्ञा देना आपके लिए अति कठिन था परन्तु उद्देश्य की महत्ता के सामने यह भी सरल था। इमाम हुसैन ने इसे भी स्वीकार कर लिया।

हुसैन की सेना के सेनापति की बिदाई

जब इमाम हुसैन की ओर कोई लड़ने वाला न रहा तो आपके भाईयों की बारी आई और सब शहीद हो

गए तो अंत में आपकी सेना के सेनापति तथा आपके लघु भ्राता हज़रत अब्बास ने जिहाद करने की आज्ञा चाही। हुसैन न चाहते थे कि यह आपकी सेना का चिन्ह जो आपके जिहाद की उच्चता व महत्ता का घोतक था वह झुक जाये परन्तु अन्य कोई कुर्बानी शेष न रह गई थी अतः अब्बास को भी मैदान में भेज दिया।

संसार ने देखा कि जब तक अब्बास में जान बाक़ी रही इस्लामी धवज कांधों पर लहराता रहा। यहाँ तक कि हाथ कट गए। फिर भी ध्वज को भुजाओं से संभाला अब्बास घोड़े से गिरे। हुसैन का ध्वज भूमि पर गिर पड़ा। वह झुक गया परन्तु नहीं-नहीं वह ध्वज इतना ऊँचा हुआ कि वही ध्वज प्रत्येक सत्य-उपासक के कांधों पर है। जब तक विश्व में सत्य का चिन्ह भी शेष है जब तक इस्लाम का नाम है उस समय तक हुसैन का ध्वज संसार में ऊँचा रहेगा।

अंतिम बलिदान

हुसैन के पास अब कुछ न रह गया था परन्तु विरोधी दल की हिंसा का अंतिम बाण शेष था और उसके लिए हुसैन निशाने खोज रहे थे। उन्हें मानव-जगत के सम्मुख एक ऐसा निरापराध उपहार प्रस्तुत करना था जिस पर किसी विधान या धर्म के दृष्टिकोण से पाप करने का इल्ज़ाम न आ सकता हो।

ढूँढ लिया हुसैन ने यह अंतिम उपहार ढूँढ लिया। रबाब की गोद में दूध पीता बालक प्यास से सिसकियाँ ले रहा था। वृद्ध पिता ने बालक की दशा देखी और शिविर के द्वार पर उसे गोद में लिया। कहा जाता है कि शत्रु की सेना से बच्चे के लिए पानी माँगा।

यह था हुसैन का अंतिम हथियार

मानवता के हाथ पाँवो में कपकपी बढ़ गई। दया व कृपा के संसार में अंधेरा छा गया। जब हुरमुला ने बाण धनुष में जोड़ा और बच्चे की गर्दन का निशाना बना लिया। बच्चे ने जान दे दी और हुसैन के उद्देश्य में कभी न समाप्त होने वाली जान पड़ गई।

नुमाएशी (आडम्बरपूर्ण) मानवता की नक़ाब का यह अंतिम तीर था जो निर्दोष व पापहीन बालक की गर्दन में तोड़ दिया।

अब प्रत्येक धुंधली दृष्टि पर भी खुल गया कि उस के मनुष्यों का जितना समूह था वह मानवता से कितना दूर था और इमाम हुसैन जैसा व्यक्ति उनके साथ संधि कैसे कर सकता था।

बलिदान की पूर्णतया

हुसैन के पास अब कुछ न था केवल स्वयं थे। अपना सर कटा देना हुसैन के लिए अत्यन्त सरल था परन्तु उन्हें तो अपनी सहनशीलता का प्रदर्शन करना था।

अब जबकि किसी अन्य व्यक्ति की प्रतीक्षा न थी तो हुसैन थे और रण-क्षेत्र।

उतना जितना कि मानव शक्ति के अनुसार अपने संरक्षण के लिए आवश्यक था युद्ध किया और संसार ने देख लिया कि हुसैन ने इस कर्तव्य को भी उसी प्रकार निभाया जैसा इतनी दुर्दिशा, कठिनाईयों एवं विपत्तियों में कोई दूसरा कर सकता था। परन्तु एक मनुष्य का शरीर तथा तलवारों व तीरों की वर्षा- शरीर घावों से चकनाचूर हो गया। घोड़े की पीठ पर संभला न गया। योद्धा भूमि पर गिर पड़ा तथा शत्रुओं का चारों ओर से घेरा। अंततः सत्य की मूर्ति तलवारों का भाग बन गया। सत्य की गर्दन कट गयी और मानवता का सर भाले की नोक पर ऊँचा किया गया।

शत्रु ने वह सब कुछ किया जो उसकी बर्बरता की अंतिम श्रेणी हो सकती थी। यदि इमाम हुसैन को केवल अपने मार्ग से हटाना अभिष्ठ होता तो यह उद्देश्य आपके क़त्ल से पूर्ण हो गया परन्तु नहीं आपके शव को घोड़ों को दौड़ाकर कुचला गया आपके सम्बन्धियों को एक स्थान से दूसरे स्थान फ़िराया गया। यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल आपको क़त्ल करना ही अभिष्ठ न था बल्कि ऐसे केन्द्र का अंत करना और जन-साधारण की दृष्टि में अपमानित करना अभिष्ठ था जो अधिपत्य प्राप्त संगठन के उद्देश्यों से विरोध रखता हो।

यह हैं हुसैन तथा यह है उनका स्मरणीय चमत्कार। हुसैन संसार से उठ गए परन्तु वह जीवित हैं उनका मिशन जीवित है तथा उनके कारण सत्य व इस्लाम का नाम जीवित हैं।

(इमामिया मिशन प्रकाशन न० 339)

इस्लाम और अहिंसा

पंडित व्यास देव मिश्रा, बैरिस्टर-एट-लॉ, एडवोकेट सुप्रीमकोर्ट, देहली

अनुवादकः मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार में तलवार का नाममात्र का भी योग नहीं था बल्कि इसके फैलाने में इस्लाम की आदर्श शिक्षाओं, उसके अनुपम सिद्धान्तों तथा उसके व्यवहारिक नियमों का ही हाथ था जिसने उस समय लोगों के हृदय में घर कर लिया। लोग सर्वाधिक जिस वस्तु से प्रभावित हुए वह हज़रत मोहम्मद का आदर्श व्यक्तित्व था। कैसा व्यक्तित्व जिसमें सादगी एवं साधारणता कूट-कूट कर भरी थी एवं हज़रत मुहम्मद की सहानुभूतिपूर्ण भावनाएं, मित्र एवं शत्रु दोनों से प्रेम व्यवहार, अल्लाह में पूर्ण आस्था और अपने मिशन के प्रचार में भगीरथ प्रयास- यह ही वे वस्तुएं थीं जिन्होंने इस्लाम की महत्ता तथा विशेषता का सबको प्रशंसक बना दिया तथा हज़रत मुहम्मद के गुणों को प्रत्येक व्यक्ति मानने लगा, इन्हीं वस्तुओं ने, (तलवार ने नहीं) संसार की प्रत्येक कठिनाई पर विजय प्राप्त करके इस्लाम का झंठा लहराया।

--महात्मा गाँधी

हज़रत मुहम्मद का प्रस्तुत किया हुआ धर्म प्राचीनता एवं आधुनिकता का ऐसा सुन्दर मिश्रण एवं सार है जिसको पुरातनकाल के व्यक्ति सोच भी नहीं सकते थे- यही कारण था कि हज़रत मुहम्मद को अपने समय की समस्त कठिनताओं एवं बाधाओं पर विजय हुई और जब उनकी शिक्षाओं ने एक बार हृदय में स्थान बना लिया तो वह दिन प्रतिदिन, महीने-महीने, वर्ष-प्रति वर्ष, शताब्दी-शताब्दी बढ़ने एवं फैलने लगी एवं अत्यधिक उन्नति के पथ पर आरूढ़ हो चुकी है।

--मिस्टर गिबन

इस्लाम के सिद्धान्तों में एक जेहाद भी है जिन्होंने यह सुन लिया वह यह समझने लगे कि इस्लाम तो कठोरता एवं अत्याचार का समर्थक है तथा यह धर्म अपने अनुयायियों को ज़बरदस्ती तथा बलपूर्वक मुसलमान बनाने की शिक्षा देता है फिर हमारे भारत के कुछ मुस्लिम सम्राटों ने अपने अधिपत्य के लिए किए जाने वाले युद्धों का नाम ''जेहाद'' रखकर इस अशुद्ध धारणा को बल प्रदान किया।

परन्तु किसी धर्म के अनुयायियों से उस धर्म के आदेशों, सिद्धान्तों तथा शिक्षाओं का अनुमान लगाना भ्रमपूर्ण एवं अशुद्ध है क्योंकि धर्मानुयायियों के कार्य तथा कर्म-धर्म के विपरीत एवं प्रतिकूल भी हो सकते हैं अतएव किसी धर्म के सिद्धांतों का पता लगाने के लिए उस धर्म का ही ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए।

कोई धर्म अत्याचार व ज़ुल्म का पाठ पढ़ाता है अथवा अहिंसा एवं सदव्यवहार की शिक्षा देता है इसके ज्ञान की दो कसौटियाँ हैं प्रथम तो उस धर्म की पुस्तकों में लिखित आदेश तथा द्वितीय उस धर्म के अधिष्ठाताओं एवं पथ-प्रदर्शकों के कथन एवं व्यवहार। आइये तो इसी कसौटी पर इस्लाम को कसें जिससे ज्ञात हो सके कि इस्लाम हिंसा का समर्थक है अथवा अहिंसा का।

हमारी धर्म-पुस्तक ''क़ुरआन'' है, उसमें स्पष्ट शब्दों में अल्लाह का कथन है कि खुदा झगड़े को पसंद नहीं करता तो यह स्वयं सिद्ध है कि इस्लाम जो अल्लाह का अभीष्ठ धर्म है उसमें क्रूरता, कठोरता, अत्याचार व ज़ुल्म को कब स्थान मिल सकता है जबकि पवित्र क़ुरआन में एक जगह पर यह आदेश है ''ला तुफ़सेदू फ़िल अर्ज़'' अर्थात पृथ्वी पर झगड़ा (फ़साद) दंगा आदि न करो। एक दूसरे स्थान पर अल्लाह का कथन है ''ला इकराहा फ़िद्दीन'' धर्म में कठोरता नहीं है अर्थात तुम

अपने धर्म के प्रचार एवं प्रसारर्थ अपने धर्म की शिक्षाएं, सिद्धान्त एवं नियम दूसरों के सामने प्रस्तुत कर सकते हो बलपूर्वक तथा अत्याचार करके मुसलमान बनाने की छूट तुमको कदापि नहीं है। क़ुरआन के इस आदेश को दृष्टि में रखते हुए यदि कहीं कुछ मुसलमान दूसरे धर्मावलिंबियों पर अत्याचार करके बलपूर्वक मुसलमान बनाते दृष्टिगोचर हों तथा इसको अपना धार्मिक कर्तव्य समझ रहे हों तो हों परन्तु अल्लाह की दृष्टि में यह पूर्णतया अशुद्ध, दोषपूर्ण एवं दंडनीय कार्य होगा क्योंकि यह क़ुरआन के आदेश के प्रतिकूल है।

एक प्रश्न यह उठता है कि फिर जेहाद का आदेश ही क्यों दिया गया? इसका उत्तर लिखने के पूर्व यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मनुष्य का कार्य सदा शांति व समझौते से ही सिद्ध नहीं होता अपितु समयानुसार युद्ध आदि की भी आवश्यकता होती है। इस सिद्धान्त पर ''यदि तुम्हारे एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो दूसरा भी बढ़ा दो'' कार्य करना उसी समय तक उचित एवं श्रेयस्कार होगा जब तक हमारे विपक्षी एवं विरोधी में इतनी मानवता हो कि वह हमारे इस व्यवहार से लज्जित हो जाए और अपना हाथ रोक ले परन्तु यदि वह हमारे इस व्यवहार से तनिक भी प्रभावित न हो बल्कि इसके विपरीत हिंसा तथा क्रूरता व अत्याचार में और भी वृद्धि कर दे तो उस समय हम ही इस अत्याचार का कारण होंगे अतएव मालूम हुआ कि कभी-कभी युद्ध करना तथा बदला लेना भी हितकर हुआ करता है फिर जबकि इस्लाम तो केवल उत्तर स्वरूप युद्ध का ही आदेश देता है अर्थात जब कोई आक्रमण करे तो अपने प्राणों के सुरक्षार्थ युद्ध करना। इस्लाम ने जेहाद का आदेश अवश्य दिया है परन्तु राज्य व सिंहासन प्राप्ति के कारण नहीं, बलपूर्वक मुसलमान बनाने के हेतु नहीं, अपितु पारस्परिक प्रेम में वृद्धि के कारणार्थ, अत्याचार व ज़ुल्म की समाप्ति के लिए तथा शांति व समझौते की स्थापना ही के लिए जेहाद का आदेश दिया है। पवित्र क़ुरआन में स्पष्ट शब्दों में अल्लाह का कथन है ''तुम्हें क्या हो गया है कि तुम युद्ध नहीं करते उन शक्तिहीन पुरुषों, स्त्रियों एवं बालकों के कारण कि जिन्हें कष्ट पहुँचाया जा रहा है और जिनको कोई सहायता प्रदान करने वाला नहीं है।'' देखिये यहाँ भी जेहाद का आदेश असहायों की सहायता के लिए है, बलपूर्वक मुसलमान बनाने के लिए नहीं। एक दूसरे स्थान पर है ''जेहाद करो जिससे आपस के लड़ाई-झगड़े समाप्त हो जाएं'' इस स्थल पर भी जेहाद का ध्येय शांति की स्थापना मात्र ही है, राज्य व सिंहासन की प्राप्ति के लिए युद्ध करने को जेहाद नहीं कहा जा सकता।

अब आइए दूसरी कसौटी पर इस्लाम को कसें अर्थात् यह देखें कि इस्लाम के अधिष्ठाता एवं मार्ग प्रदर्शक इस सम्बन्ध में क्या करते हैं और क्या कहते हैं। इस्लाम धर्म के नेताओं में सर्वप्रथम नाम हज़रत मुहम्मद का आता है जिनके सम्बन्ध में समस्त इतिहासकार लिखते हैं कि अहिंसा की मूर्ति थे तथा अपने शत्रुओं, विपक्षियों एवं विरोधियों से भी सम्बन्धी एवं मित्र का सा व्यवहार करते थे। जब यह ऐतिहासिक तथ्य एवं निर्णय है तो भला यह कैसे सम्भव है कि वह जिस धर्म के संस्थापक एवं प्रचारक हों उसका सिद्धान्त ''अत्याचार व ज़ुल्म'' तथा ''बलपूर्वक मुसलमान'' बनाना हो। नहीं ऐसा नहीं है बल्कि आपने अपने धर्म का नाम ''इस्लाम'' रखा जिसके अर्थ हैं ''शांति एवं समझौता'' तथा इस्लाम धर्म का अनुयायी ''मुस्लिम'' तथा ''मोमिन'' कहलाता है जिसके अर्थ क्रमशः समझौता-प्रेमी एवं शांतिप्रिय के हैं। इससे यह सुस्पष्ट है कि इस्लाम शांति का संस्थापक है। और प्रेम का प्रचारक। हज़रत मुहम्मद के जीवन काल में हमें अनेकों ऐसी घटनाएं मिलती हैं जो अहिंसा के उत्कृष्ठ उदाहरण हैं। जिनमें से कुछ हम अपने पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

हज़रत मुहम्मद अपने पैग़म्बर (ईश्वरीय दूत) होने की घोषणा कर चुके हैं तथा ''ला इलाहा कहो'' यह नारा लगाया जा चुका है। उस समय लगभग समस्त मक्का हज़रत मुहम्मद का शत्रु दृष्टिगोचर होता है। जिस मार्ग से हज़रत मुहम्मद गुज़रते हैं पत्थरों की वर्षा की जाती है, काँटे बिछाये जाते हैं, कूड़ा फेंका जाता है, नमाज़ पढ़ते समय दुर्गन्ध फेंकी जाती है। एक वृद्ध स्त्री ने तो अपना नित्य-कर्म बना लिया था कि जब हज़रत मुहम्मद

उधर से गुज़रते तो वह उन पर कूड़ा फेंका करती, पर आप तनिक भी क्रोधित न होते। एक दिन उसने कूड़ा न फेंका। हज़रत मुहम्मद ने पूछा कि वह वृद्ध स्त्री जो मुझ पर प्रतिदिन कूड़ा फेंका करती है आज कहाँ है और उसने कूड़ा क्यों न फेंका। लोगों ने उत्तर दिया कि वह बीमार है रोग-ग्रस्त है। हज़रत मुहम्मद उसके घर गए। उस वृद्ध-स्त्री ने जब हज़रत मुहम्मद को आते देखा तो कहा कि ऐ मुहम्मद! उस समय बदला लेने आए हो जब मैं बीमार हूँ रोग-ग्रस्त हूँ। हज़रत मुहम्मद ने कहा नहीं मैं तुझे देखने आया हूँ। जब उसने हज़रत मुहम्मद के चरित्र की इस पराकाष्ठा को देखा तो इतना अधिक प्रभावित हुई कि इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

कहने वाला कह सकता है कि हज़रत मोहम्मद के मक्के में निवास करने वाले समय में उनके अनुयायियों की संख्या बहुत कम थी अतएव वह इस प्रकार का अहिंसापूर्ण व्यवहार करने पर बाध्य थे परन्तु यदि हज़रत मोहम्मद के उस जीवन-काल पर हम दृष्टिपात कर लें जब आपके पास धनाधिक्य भी हो गया था, आपके अनुयायियों की संख्या में भी असाधारण वृद्धि हो गयी थी, आपके पास एक विशाल सेना भी थी परन्तु फिर भी आपने अपने शत्रुओं, विरोधियों एवं विपक्षियों से अहिंसापूर्ण व्यवहार ही किया, उन पर कभी अत्याचार अथवा ज़ुल्म न किया।

इस उपरोक्त कथन की पुष्टि के लिए यह प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है कि जब हज़रत मोहम्मद विजयी के रूप में मक्के में प्रवेश कर रहे थे उस समय आपके अनुयायियों एवं साथियों में बदला लेने की भावना प्रज्वलित थी क्योंकि आज उस भूमि पर विजेता के रूप में पदार्पण कर रहे हैं जहाँ से कल अत्यंत निर्दयता के साथ निकाले गये थे। मन में कह रहे हैं कि आज हम अपने शत्रुओं एवं विरोधियों से बदला अवश्य लेंगे। हज़रत मोहम्मद के एक अनुयायी जिनके हाथ में इस्लाम का झंडा है वह यह नारा लगाते हुये आगे बढ़ रहे हैं कि आज बदला लेने का दिन है। यह आवाज़ हज़रत मोहम्मद के कानों तक भी पहुँचती है वह अपने उन अनुयायी को बुलाते हैं कि जिनके हाथ में इस्लामी पताका है और कहते हैं कि इस्लाम जो अहिंसा का प्रचारक है तथा प्रेम-भाव का पाठ पढ़ाता है। उसका झंडा एक ऐसे आदमी के हाथ में कदापि न होना चाहिए जो अपने शत्रुओं पर भी अत्याचार करना चाहता हो। यह कहकर अपने एक दूसरे अनुयायी को बुलाकर झंडा उसे देते हुये कहते हैं कि यह नारा लगाते हुये चलो कि आज हज़रत मोहम्मद की विशिष्ट कृपा-दृष्टि का दिवस है।

केवल इतना ही नहीं बल्कि जब मक्के में प्रवेश करते हैं और आपके शत्रु एवं विरोधी पंक्तिबद्ध क़ैदियों के समान खड़े किये जाते हैं। इनमें वे लोग भी हैं जिन्होंने हज़रत मोहम्मद और उनके सच्चे अनुयायियों को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचाये थे, उनके मार्ग में विपत्तियाँ, अड़चनें एवं काँटे बिछाये थे और इतने अधिक कि हज़रत मोहम्मद को हिजरत (मक्के से मदीने को प्रस्थान) पर बाध्य होना पड़ा था। इन क़ैदियों में वह भी हैं जिन्होंने आप से युद्ध किये थे और आपके चचा हज़रत हमज़ा की अत्यंत निर्दयता से हत्या की थी तथा उनके शव का अत्याधिक अपमान किया था। उन सबकी गर्दनें आज लज्जा से झुकी हुई हैं। हज़रत मोहम्मद उन सबसे पूछते हैं बताओ तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाये। उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिलता है परन्तु उनकी झुकी हुयी गर्दनें जो इस प्रश्न के बाद और झुक गयीं हैं, इस बात की प्रतीक हैं कि मानो वे यह कह रहे हों कि होना तो हमारे साथ वैसा ही व्यवहार चाहिये जैसा हमने आपके साथ किया था अर्थात जो अत्याचार हमने आप और आपके साथियों पर किये थे आप उसका पूरा-पूरा बदला ले सकते हैं परन्तु हज़रत मोहम्मद जैसे कृपा-निधि एवं आदर्श मानव की मानवता का तक़ाज़ा कुछ और था अतएव आपने कहा कि जाओ तुम सब स्वतंत्र हो और तुम लोगों के लिए सर्वत्र शरण-स्थान है तुम्हारी धन-सम्पत्ति पर कोई मुसलमान आधिपत्य न जमायेगा न तुम से छीनेगा।

हज़रत मोहम्मद की इस कृपा-दृष्टि एवं अहिंसा को देखकर लगभग समस्त मक्का निवासी मुसलमान हो जाते हैं। आपने उन लोगों के साथ भी लेश-मात्र भी कठोरता न की जो आपके जीवन-दीप को बुझा देना चाहते थे और जिन्होंने अब विवशतः इस्लाम धर्म का अनुयायी होना स्वीकार किया था।

क्या इन घटनाओं के पढ़ने के बाद भी लोग कहेंगे कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला। मैं भी कहता हूँ कि हाँ इस्लाम के प्रचारने बड़ा योग दिया परन्तु जो इस्लाम तलवार के बल पर फैला वह हज़रत मोहम्मद का लाया हुआ न था बल्कि वह था विजेताओं एवं आक्रमणकारी मुसलमानों का इस्लाम। उसे हज़रत मोहम्मद के इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं। हज़रत मोहम्मद का इस्लाम जिस तलवार से फैला वह सत्य, प्रेम व अहिंसा की तलवार थी। वह अधर्मियों को नहीं काटती थी बल्कि अधर्म को समाप्त करती थी तथा मनुष्य की हत्या करने की अपेक्षा उसके अवगुणों का नाश करती थी एवं ज़ुबानों को विजयी करने के बजाए हृदयों पर अपना अधिकार जमाने का यत्न करती थी।

इस्लामी इतिहास के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में हज़रत मोहम्मद के बाद हज़रत अली का नाम आता है। आपका पवित्र जीवन भी अहिंसा से परिपूर्ण था। हज़रत अली जब युद्ध करते थे तो आप से लड़ने जो भी आता उसके सम्मुख तीन शर्तें रखते। प्रथम तो यह कि यदि वह बिना लड़े ही जाना चाहता है तो उसे यह छूट है कि वह बिना लड़े ही वापस हो जाये। द्वितीय यह कि यदि जाना न चाहे तो इस्लाम को स्वीकार कर ले यदि यह शर्त भी वह स्वीकार न करता तो विवशतः लड़ने पर तैयार हो जाते।

हज़रत मोहम्मद के देहावसान के पश्चात् जब मुसलमानों की समस्त शक्तियाँ एवं विचारधारायें इस्लामी शासन की सीमाओं में वृद्धि करने तथा अन्य देशों पर अपनी विजय पताका लहराने पर केन्द्रित हो गयीं और क़ुरआन के आदेशों तथा हज़रत मोहम्मद के कथनों एवं शिक्षाओं के विपरीत अत्याचार से काम लिया जाने लगा तथा पड़ोसी देशों पर चढ़ाईयां की जाने लगीं तो उस समय भी हज़रत अली वास्तविक इस्लाम का सच्चा रूप जन-साधारण के सम्मुख रखने में संलग्न थे। दूसरे मुसलमान देशों को विजय करके इस्लामी राज्य के विस्तार करने में लगे हुये थे तथा वह अपने अत्याचारपूर्ण व्यवहार से ऐसे प्रमाण प्रस्तुत कर रहे थे जिससे लोग मुसलमानों को विजेता, अत्याचारी, क्रूर, शांति भंग करने वाला, लुटेरा आदि समझने लगें तथा उनके हृदय में मुसलमानों की ओर से उस प्रकार की घृणा उत्पन्न हो जाये जो एक पराजित देश को विजयी देश के साथ स्वतः उत्पन्न हो जाती है परन्तु उस समय भी हज़रत अली अपने आदर्श चरित्र एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व द्वारा उन पराजित देशों के निवासियों के हृदयों पर अधिकार जमा रहे थे जिसमें हिंसा का कहीं नाम न था।

हज़रत अली ने विश्व के सम्मुख एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर दिया कि देश किस प्रकार विजय किये जाते हैं हज़रत अली ने यमन नामक देश पर विजय प्राप्त कर ली परन्तु वहाँ की भूमि पर एक बूँद रक्त की न गिरी न वहाँ कमानों की कड़क, नैज़ों (भालों) की लचक और तलवारों की चमक दृष्टिगोचर हुयी परन्तु समस्त देश आपका अनुयायी हो गया जिसका कारण केवल यह था कि आपने अत्याचार, कठोरता एवं तलवार के प्रयोग की अपेक्षा प्रेम-भाव, चरित्र की पराकाष्ठा, तथा नम्रता से हृदयों को मोहने का सफ़ल कार्य किया था। क्या इतिहास किसी देश को विजय करने में अहिंसा का ऐसा उत्कृष्ठ उदाहरण पेश कर सकता है।

और यदि इससे बढ़कर और श्रेष्ठ अहिंसा का उदाहरण देखना है तो आइये रमज़ान (वह पवित्र महीना जिसमें रोज़े (व्रत) रखे जाते हैं) की अट्ठारह तारीख़ को कूफ़े (एक नगर का नाम) की मस्जिद में हज़रत अली के सर पर क़ातिल की तलवार लग चुकी है, इस बुरी तरह घायल हुये हैं कि बचने की कोई आशा शेष नहीं रह गयी है। लोग क़ातिल को गिरफ़्तार करके लाते हैं। मुश्कें कसी हुयी हैं परन्तु क्या कहना हज़रत अली की दया व कृपा के अपार समुन्द्र का कि आप फ़रमाते हैं कि इसकी मुश्कें खोल दो और देखो इसको प्यास बहुत लगी मालूम होती है। अतएव मेरे लिए जो शरबत लाया गया है पहले इसको पिला दो। कोटि-कोटि प्रणाम हो ऐसी अहिंसा की मूर्ति एवं दया के निधि धार्मिक अधिष्ठाता पर जिसका व्यवहार शत्रु एवं क़ातिल के साथ भी सम्बन्धी एवं मित्र का जैसा हो। वह है इस्लाम की शिक्षा, इसका नाम है अहिंसा।

हज़रत इमाम हुसैन (कर्बला के अमर शहीद) के जीवन में भी हमें अहिंसा एवं अपार प्रेम के अनेकों उदाहरण मिलते हैं। जब आप कर्बला की ओर जा रहे

थे और मार्ग में थे। उस समय हुर (हुसैन का एक शत्रु जो बाद में इमाम हुसैन की ओर आ गया और आपके प्राणों की रक्षा करते हुए शहीद हुआ) की सेना जो केवल इस कारण आयी थी कि इमाम हुसैन को आगे न बढ़ने दिया जाये वह भी जब पानी माँगती है तो हुसैन अपने इस शत्रु सेना को भी अरब के जलशून्य मार्गों में अपने बालकों एवं स्त्रियों का विचार किये बिना सारा पानी पिता देते हैं।

कर्बला के रण-क्षेत्र में लड़ते-लड़ते घावों एवं प्रहारों से चूर होकर जब भूमि पर गिरते हैं तथा परम पिता परमेश्वर के आगे शीश को भूमि पर टिका देते हैं। शिम्र (जिसने आप का गला काटा था) यह समझता है कि इमाम हुसैन हम लोगों के लिए अमंगल कामनायें कर रहे होंगे परन्तु जब कान लगा कर सुनता है तो हुसैन कह रहे थे कि हे अल्लाह! मेरे नाना (हज़रत मोहम्मद के अनुयायी) बहुत पापी हैं तू इनके पापों को क्षमा कर दे। कठिनाईयों एवं विपत्तियों के साम्राज्य में कठिनाईयाँ पहुँचाने वालों के लिए ही मंगल कामना करना यह है अहिंसा का अद्वितीय उदाहरण।

इसी प्रकार हमारे दूसरे धार्मिक अधिष्ठाता भी हमें अहिंसा का पाठ पढ़ाते रहे। अन्य धर्म-अधिष्ठाताओं के जीवन-काल से अहिंसा के उज्जवल एवं उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करने की अपेक्षा केवल इतना लिखने पर ही लेख समाप्त करता हूँ कि इस्लामी इतिहास, धार्मिक अधिष्ठताओं की इन अहिंसापूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण है तथा इन्हीं घटनाओं ने महात्मा गाँधी और मिस्टर गिबन जैसे राष्ट्रीय एवं राजनीति के नेताओं को यह लिखने पर बाध्य कर दिया कि इस्लाम के प्रचार तथा प्रसार में तलवार का हाथ नहीं था बल्कि इस्लाम के धार्मिक नेताओं के नैतिक गुणों एवं अहिंसापूर्ण व्यवहारों ने इस्लाम के आगे लोगों के शीश नवा दिये।

शेष..... याद और यादगार

हज़रत अली की पुत्री है जो वैभवशाली राजनीति को पराजित कर रही है। वे जानती हैं कि यह समय की राजनीति का दबाव है जो हम दुखियों का दिल बहलाने पर विवश कर रहा है। आप ने कहा कि मेरी ओर से यज़ीद से कहो कि अभी हम अपने स्वामी को रोए नहीं हैं पहले एक घर ख़ाली करा दे कि हम अपने सम्बन्धियों को रो लें। फिर बताएंगे कि हब हम यहाँ रहेंगे या मदीने वापस जाएंगे।

लीजिए हुसैन का मातम करने वालों की पंक्ति बैठ गई अब जो समाचार मिला कि हुसैन का मातम उनके सम्बन्धी कर रहे हैं तो शोकपूर्ण वस्त्र पहन कर कुरैश के परिवार की भद्र स्त्रियाँ आईं वस्तुतः हज़रत ज़ैनब ने इस पंक्ति के साथ सहस्त्रों हृदय में हज़रत इमाम हुसैन के मातम की पंक्ति बिठा दी। हम सब भी आज ज़ैनब की बिठाई हुई पंक्ति पर हैं।

अब कौन बता सकता है कि इस प्रभाव को कि ''लैला'' की ज़बान और अली अकबर का मातम, हसन की विधवा की ज़बान और क़ासिम का व्याख्यान, ज़ैनब की ज़बान और हुसैन का मर्सिया, रबाब की ज़बान और अली असग़र का नौहा और फिर तो हज़रत ज़ैनब ने सीमा स्थापित कर दी आप सब को अनुभव है कि अन्तिम में पढ़ने वाले के व्याख्यान के पश्चात जब आकृतियाँ आती हैं तो क्या प्रभाव होता है, यद्यपि कि उन आकृतियों में क्या होता है? एक ताबूत जिसमें शव कोई नहीं, एक झूला जिसमें बच्चा कोई नहीं उपस्थित, एक दुल-दुल जिस पर कोई सवार नहीं। इससे क्या हाहाकार होती है- और वहाँ हज़रत ज़ैनब कहती हैं कि यज़ीद से कहो कि जहाँ इतना किया है हमारे सम्बन्धियों के कटे हुए शीश भी भेज दे- लीजिए मातम करने वाले पंक्ति बाँधे खड़े हैं, और अटठारह शीश लाए जाते हैं, हाय हुसैन! हाय अब्बास! हाय अली अकबर!!!

(इमामिया मिशन लखनऊ प्रकाशन न० 515
मुहर्रम 1387हि०/अप्रैल 1967ई०)

हमारे हैं हुसैन अ०

श्री विश्वनाथ प्रसाद ''माथुर'' लखनवी
अनुवादक- मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन

उर्दू के युग प्रवर्तक कवि जोश मलिहाबादी की ये पंक्तियाँ बहुधा पढ़ता रहता हूँ।

कब सिर्फ़ मुसलमान के प्यारे हैं हुसैन।
चर्खे नौए बशर के तारे हैं हुसैन।।
इन्सान को बेदार तो हो लेने दो।
हर क़ौम पुकारेगी हमारे हैं हुसैन।।

मुझे इन पंक्तियों के काव्य सौंदर्य पर कुछ लिखना अभीष्ठ नहीं है मैं तो उपरोक्त पंक्तियों की अंतिम पंक्ति का अर्द्ध भाग अपनी भावनाओं की दृष्टि से देखता रहता हूँ। क्या वास्तव में हुसैन ऐसे हैं कि शताब्दियाँ व्यतीत हो जाने के उपरांत भी प्रत्येक जाति को आज भी उनकी आवश्यकता है या प्रत्येक मनुष्य उनसे सहायता की याचना करता है। फिर यह भी विचार करता हूँ कि मनुष्य होने के नाते क्या मुझे भी यह अधिकार प्राप्त है कि जोश मलिहाबादी की भांति हम भी यह कह सकें कि ''हमारे हैं हुसैन''।

सर्वप्रथम तो हमें यह देखना और समझना चाहिए कि हुसैन कौन थे? उनका उद्‌देश्य क्या था? उनकी परिस्थितयाँ किस प्रकार की थीं? मानवता को उनसे क्या लाभ पहुँच सकते थे? और मनुष्य उनकी क्या सेवा कर सकता था? इसलिए कि वह संसार में प्रकट रूप में उपस्थित नहीं हैं परन्तु मुसलमानों के दृष्टिकोणानुसार वह जीवित हैं और मेरे विचार में अमर हैं। दोनों का तात्पर्य लगभग एक है, यदि क्षणमात्र के लिए इस्लाम के धार्मिक दृष्टिकोण को न भी स्वीकार किया जाए तब भी हज़रत इमाम हुसैन के जीवित होने तथा उनके अमर होने का विश्वास प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ेगा। हमको अपने धर्म की शिक्षाओं के प्रकाश में यह भी देखना पड़ेगा कि इमाम हुसैन और उनके उद्‌देश्यों में वे क्या विशेषताएं हैं जिनको देखते हुए संसार में बसने वाली प्रत्येक जाति यह कहने पर तैयार हो जाएगी कि ''हमारे हैं हुसैन''।

इमाम हुसैन, मुसलमानों के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के छोटे नाती हैं। इस प्रकार वह अपने नाना ही की भांति इस्लाम के संस्थापकों में से एक हैं तथा इसके साथ ही साथ उनकी शिक्षाएं, उनके कर्म, उनका धैर्य, उनकी दृढ़ता, उनकी अडिगता एवं उनके पवित्र विचार ऐसे हैं जिनको प्रत्येक धर्म के अनुयायियों एवं समस्त मानव जाति को इसलिए स्वीकार करना पड़ेगा कि उनमें जो भी गुण विद्यमान हैं या जो घटनाएं उनके जीवन में घटित हुयीं उनका सम्बन्ध पूर्णतया, मानवता एवं मानव जाति से है तथा उससे इंसानियत को अत्याधिक लाभ पहुँच सकता है। हज़रत इमाम हुसैन ने केवल एक ही शिक्षा नहीं दी है बल्कि अनेकानेक प्रकार से मनुष्य को सदमार्ग का पता बताया है। जिस प्रकार एक बहती हुई नदी प्यास बुझाने में धर्म का नाम नहीं पूछती, जिस प्रकार चमकता हुआ सूर्य बिना धर्म-जाति का भेदभाव किए संसार के प्रत्येक घर में धूप पहुँचा देता है, जिस प्रकार अल्लाह प्रत्येक धर्म के अनुयायी को रोज़ी देता है, यहाँ तक कि उन लोगों का भी पेट भर देता है जो उसके अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते तथा भौतिकता में इतने लीन हो गए हैं कि आध्यात्मिकता का लेश मात्र भी ध्यान नहीं करते। ठीक उसी प्रकार इमाम हुसैन का उपकार प्रत्येक व्यक्ति पर समान है। इन उपकारों का यह अर्थ नहीं है कि इमाम हुसैन ने सम्पूर्ण जगत में धन-दौलत वितरित की। प्रथम तो धन-सम्पत्ति उनके पास थी ही नहीं और यदि होती भी तो धन का उपकार सामयिक होता है जो कुछ समय

बीत जाने के बाद शेष नहीं रहता। वास्तव में बुनियादी बलिदान उसी को कहते हैं जो सम्पूर्ण मानव-जाति पर किया जाए। उदाहराणर्थ हज़रत ईसा (जिन्हें ईसाई अल्लाह का पुत्र मानते हैं) ने यह कहा था कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो तुम्हें दूसरा गाल भी बढ़ा देना चाहिए यह एक नैतिक शिक्षा है जिससे प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है। हज़रत इमाम हुसैन ने भी ऐसी ही शिक्षाएं दी हैं तथा अपने कर्म से इस बात की शिक्षा दी है कि यदि कभी अत्याचारी तथा उसके अत्याचार से टक्कर हो जाए तो मनुष्य को क्या करना चाहिए। प्यास मनुष्य की प्राकृतिक इच्छा है और कर्बला में इमाम हुसैन पर पानी बन्द किया जाता है। तीन दिन तक पानी की एक बूँद उनको और उनके साथियों को प्राप्त नहीं होती परन्तु वह अपनी प्यास की शिकायत नहीं करते बल्कि इंसानियत के दामन में लिपटे हुए अपने एक छः मास के बालक अली असग़र को अपनी धीरता का टुकड़ा बनाकर अत्याचारियों की क्रूर दृष्टि के सम्मुख पेश करते हैं तथा संसार को यह बता देते हैं कि मानवता उस समय तक मानवता है जब तक वह अपनी सीमा में रहे, वरन् रूप रंग के प्रकट अंतर के अतिरिक्त मनुष्य तथा पशु में बहुत सी चीजें एक-सी हैं। उदाहरणतया मनुष्य में भी बढ़ने की शक्ति है, पशुओं में भी बढ़ने की शक्ति है। मनुष्य में भी चलने फिरने की शक्ति है और पशुओं में भी, मनुष्य भी खाता पीता है और पशु भी, मनुष्य भी जन्म लेता है पशु भी, मनुष्य भी मरता है पशु भी फिर वह कौन सी ऐसी विशेषता है जिसने मनुष्य को पशु से अलग कर दिया और दोनों के मार्ग एक दूसरे से पृथक कर दिये। उसी का नाम है ''मानवता'' जो पशुता से बिल्कुल अलग वस्तु है। इस मानवता की नींव नीति, प्रेम, सहृदयता, एकता एवं सहानुभूति पर रखी गई है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिन मनुष्यों में नीति व प्रेम, सहानुभूति की भावना, हृदय की स्वच्छता, न हो वे मनुष्यों जैसा रूप रखने के बावजूद मनुष्य रूपी पशु कहे जाने के अधिकारी हैं। इसी बात को और इन्हीं विशेषताओं को इमाम हुसैन ने अपने छः मास के बालक के लिए पानी माँगने के समय उसको सेना के सामने लाकर स्पष्ट कर दिया।

मेरे विचार में बहुत से अवसर ऐसे भी आते हैं जब पशु में भी दया व सहानुभूति की भावना उत्पन्न हो जाती है जैसे अभी कुछ समय पूर्व तक समाचार-पत्र में यह ख़बर दृष्टिगोचर हुई कि तहसील बिलासपुर ज़िला रामपुर (यू०पी०) के किसी जंगल में एक स्त्री अपने बच्चे को गोद में लिए हुए चिकित्सालय जा रही थी, रास्ता अकेला था तथा प्रत्येक ओर सन्नाटा। झाड़ी से यकायक एक शेरनी निकल आई। स्त्री का दिल कितना, वह घबरा गई और घबराहट में उसका बच्चा गोद से छूटकर गिर गया और यह स्त्री किसी दूसरे पेड़ की आड़ में भयभीत होकर छुप गई। शेरनी उसके बच्चे के निकट आई तथा देर तक उसको चाटती रही। माता का हृदय धड़कता रहा, परन्तु उस हिंसक पशु ने बच्चे को उसकी दशा पर छोड़कर अपना रास्ता लिया। स्त्री, वृक्ष की आड़ से बाहर आई तथा अपने बच्चे को उठाकर चली गई। यदि इस घटना को थोड़े समय के लिए यज़ीदी सेना के सिपाहियों की क्रूरता व अत्याचार के मुक़ाबले में प्रस्तुत किया जाए तो जानवर होने के बाद क्या यह शेरनी उस हुरमुला (मनुष्य) से श्रेष्ठ सिद्ध नहीं होगी, जिसने छः महीने के बालक अली असग़र (इमाम हुसैन के सुपुत्र) को प्यासा देखने के बाद भी अपने तीर का निशाना बना दिया।

मैं इससे पूर्व लिख चुका हूँ कि व्यवहार तथा आचरण ही मनुष्य को मनुष्य तथा पशु को पशु बना देते हैं। शेरनी ने एक बच्चे पर दया करने के बाद यह सिद्ध कर दिया कि यदि वह मनुष्य के रूप में कर्बला के रणक्षेत्र में होती तो वह न करती जो व्यवहार हुरमुला ने अली असग़र के साथ किया। अतएव यह बात स्वीकार करना पड़ेगी कि इमाम हुसैन[अ०] ने अपने बच्चे अली असग़र का क़त्ल होना (शहादत) तो अवश्य मंज़ूर कर ली परन्तु मानवता तथा पशुता को अलग-अलग करके दिखा दिया एवं अपने व्यवहार से यह आदर्श शिक्षा हम तक पहुँचा दी कि चरित्र की मलिनता अथवा पवित्रता ही से पशुता और मानवता का अंतर स्पष्ट होता है।

कर्बला की घटना को जानने और समझने के लिए अब इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता शेष नहीं रह गई है क्योंकि दुनिया प्रतिवर्ष मोहर्रम में उन घटनाओं को दोहराती रहती है। यथाकारेण मुझे कर्बला की घटना

का विस्तार पूर्वक वर्णन करना नहीं है केवल इतना कहना मात्र है कि एक ओर माविया का पुत्र यज़ीद था जिसने हिंसा व अत्याचार का बोलबाला कर दिया, मदिरा पान जिसको अत्यंत प्रिय था, व्यभिचार में जिसने मानवता तक का त्याग कर दिया था। ऐसी दशा में हज़रत इमाम हुसैन यह क्योंकर देख सकते थे कि नीति, प्रेम तथा एकता कि जिसके झंडे को उनके नाना हज़रत मुहम्मद ने ऊँचा किया था, कुछ वर्षों बाद ही यज़ीद अपने दुराचरण से गिराने पर तैयार हो गया तथा उसनेयह तय कर लिया था कि सम्पूर्ण विश्व को अपने जैसा बनाये बिना नहीं रहेगा मानवता एवं पशुता की सीमाओं को इस प्रकार मिला देगा कि मानव-जाति के लिए मानवता व पशुता में अंतर करना दुष्टकर हो जाए।

जब यज़ीद ने यह देखा कि संसार का वातावरण मेरे पक्ष में ही है तथा केवल इमाम हुसैन और उनकी शिक्षाओं का पालन करने वाले मेरे मार्ग में बाधक सिद्ध हो सकते हैं तो उसने इमाम हुसैन से बैअत (अपने को ही ख़लीफ़ा मान लेने की प्रतिज्ञा) लेना तय कर लिया। बैअत का तात्पर्य है दूसरे की आत्मिक भावनाएं क्रय कर लेना, उसे अपना दास व गुलाम बना लेना। यज़ीद जानता था कि यदि इमाम हुसैन ने मुझे धार्मिक अधिष्ठाता (ख़लीफ़ा) स्वीकार कर लिया तो यह उसकी विजय होगी तथा हुसैनी मिशन समाप्त हो जाएगा और यदि हुसैन ने मुझे ख़लीफ़ा मानने से इनकार कर दिया तो उनको क़त्ल कर देने के बाद वह विश्व से मानवता के संहार कर देने में सफ़ल हो जायेगा।

यदि इमाम हुसैन पूर्णतया युद्ध की तैयारी करने के बाद दस बीस हज़ार की सेना लेकर यज़ीद के मुक़ाबले में आ जाते तो फिर सम्भव है कि कर्बला के युद्ध पर दो ''राजकुमारों की लड़ाई'' का संदेह हो जाता। परन्तु इमाम हुसैन जैसा बुद्धिमानी, धीर, वीर, सदाचारी, दूरदर्शी तथा कूटनितिज्ञ महान व्यक्ति यज़ीद की चाल से परिचित हो चुका था। इसलिए हज़ारों सेनानियों के मुक़ाबले में वह सेना नहीं लाए, बल्कि कुछ वृद्धाओं, बालकों और नवयुवकों को साथ लेकर उस समय कर्बला में आए, जब यज़ीद की सेना ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया था और उनके लिए केवल दो ही बातें शेष रह गयीं थीं। वह यज़ीद को धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार करके अपने प्राणों का संरक्षण कर लेते या क़त्ल (शहीद) हो जाते। यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने से वह सदैव इनकार करते रहे यथाकारेण शहीद होना स्वीकार कर लिया। उन्होंने यज़ीदी शक्तियों को दिल खोलकर अत्याचार करने का अवसर दिया परन्तु पाशविक शक्ति के आगे शीश नवाने पर तैयार न हुए। धन-सम्पत्ति ही नहीं उन्होंने सत्य पर, धर्म पर तथा मानवता पर संतान तक को बलिदान कर दिया। यहाँ तक कि छः मास के बालक का क़त्ल हो जाना भी स्वीकार कर लिया परन्तु एक भ्रष्टाचारी के हाथ में हाथ देकर अपने प्राणों की रक्षा करना, अच्छा न समझा।

यही कारण है कि कर्बला की घटना का अध्ययन मानवता तथा पशुता की सीमाओं को एक दूसरे से बिल्कुल अलग करके दिखा देता है और इमाम हुसैन यह बता देते हैं कि मनुष्य पर चाहे कितने ही अत्याचार व प्रहार क्यों न हो, इंसान को धैर्य एवं दृढ़ता का त्याग नहीं करना चाहिए तथा असत्य के आगे सर न झुकाना चाहिए।

यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि विश्व में जितनी महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं वे अधिकतर उसी धर्म के अनुयायियों द्वारा हुईं उदाहरणार्थ हज़रत ईसा को सूली (फांसी) पर चढ़ाने वाले वैसे तो दूसरे धर्म के मानने वाले थे परन्तु इस अत्याचार का कारण उनके अनुयायियों का विरोध ही था। इमाम हुसैन को भी यदि विश्व की कोई अन्य जाति जैसे ईसाई या यहूदी शहीद करती तो सम्भवतः दुनिया पर आपके अद्वितीय बलिदान का प्रभाव उतना अधिक दृष्टिगोचर न होता जितना कि आज दिखाई पड़ रहा है। यह बात तो स्वतः विदित एवं स्वयं सिद्ध है कि एक देश पर दूसरे देश का आक्रमण कर देना, एक की धन-सम्पत्ति पर दूसरे का क़ब्ज़ा कर लेना कोई विशेष महत्व की वस्तु नहीं क्योंकि यह तो प्रतिदिन हुआ करता है। परन्तु वे अत्याचार अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं कि जो अपनों के हाथों अपने ही पर किए जाएं।

यज़ीद के पूर्वज अधर्मी (काफ़िर) थे और पिता तथा दादा (अबुसुफ़यान और माविया) ने हृदय से इस्लाम को नहीं अपनाया था परन्तु यज़ीद ने न केवल मुसलमान

होने का दावा किया बल्कि बिना योग्यता एवं अधिकार रखने के मुसलमानों का धार्मिक अधिष्ठाता भी बन बैठा। हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने उमर जैसे व्यक्ति ने भी पहले यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने से इनकार किया परन्तु बाद में धन वैभव के लोभ में उन्होंने भी यज़ीद ऐसे दुष्ट चरित्र व्यक्ति को अपना धार्मिक अधिष्ठाता स्वीकार ही कर लिया। दुनिया के प्रत्येक इस्लामी इतिहास में उनका पहले यज़ीद को ख़लीफ़ा न मानने का वर्णन भी मिलता है और फिर उनका यज़ीद को धर्म-गुरु स्वीकार करने का विवरण भी मिलता है। हमें इस समय इस बात पर दृष्टिपात नहीं करना है कि उन्होंने पहले यज़ीद को ख़लीफ़ा मानने से क्यों इनकार किया और बाद में क्यों मान लिया क्योंकि यह बात वे लोग भली प्रकार समझ सकते हैं जो आज भी मुसलमान होने के बावजूद ''ख़िलाफ़ते माविया व यज़ीद'' (इस पुस्तक में यज़ीद को वास्तविक ख़लीफ़ा सिद्ध करने का असफ़ल प्रयास किया गया है और इमाम हुसैन को एक बाग़ी के रूप में प्रस्तुत करने का दुस्साहस भी किया गया है) जैसी पुस्तक लिपिबद्ध कर सकते हैं। हमें इस समय इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करना नहीं हैं परन्तु हम यह अवश्य स्पष्ट करना चाहते हैं जो भी अत्याचार प्रचुर मात्रा में हुए हैं उनमें क़त्ल करने वाला और क़त्ल होने वाला, अत्याचारी एवं अत्याचार सहन करने वाला, एक ही सम्प्रदाय से सम्बन्धित आपको मिलेंगे अर्थात यज़ीद तो 1300 वर्ष पूर्व मर चुका, उसके अत्याचारों से केवल मुसलमानों ही का नहीं, बल्कि विश्व का इतिहास परिपूर्ण है, परन्तु वह अत्याचार करने वाला आज संसार में नहीं था तो इसलिए पाकिस्तान में एक ऐसा व्यक्ति जन्मा जिसने न केवल इस्लाम और मुसलमानों के, बल्कि ''मानवता-संसार'' के विरूद्ध एक बार फिर बग़ावत (विरोध) का झंडा ऊँचा कर दिया।

''ख़िलाफ़ते माविया व यज़ीद'' नामक पुस्तक को हमने नहीं पढ़ा 'कोटेशन' हम ने अवश्य पढ़े हैं जिनको पढ़ने के बाद हम ने यह अनुमान लगा लिया कि अब भी संसार में ऐसे व्यक्ति पाए जाते हैं जो नरक को स्वर्ग, और स्वर्ग को नरक के नाम से याद करते हैं यही नहीं बल्कि निकले हुए सूर्य की उपस्थित और चौदहवीं के चाँद की छिटकी हुई चांदनी से भी इनकार करते हैं। हमें नहीं मालूम कि पाकिस्तान में कोई पागलख़ाना है या नहीं, परन्तु महमूद अहमद अब्बासी (जो कि उपरोक्त वर्णित पुस्तक के लेखक हैं) जैसे पागलों एवं बुद्धि के शत्रुओं का इलाज संसार का कोई पागलख़ाना भी नहीं कर सकता। इसलिए कि असत्य एवं अवास्तविकता से तो इनकार सम्भव है, किन्तु वास्तविकता से इनकार बिल्कुल ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति उज्जवल आकाश पर प्रकाशमान तारागणों, चन्द्रमा की चन्द्रिका एवं मध्यान्ह (दोपहर) की धूप से इनकार कर दे।

कहने का आशय केवल इतना है कि विश्व ने फिर एक बार समझ लिया कि यज़ीद तो जन्म लिया ही करते हैं और लिया करेंगे, परन्तु हुसैन सृष्टि के आरम्भ से आज तक केवल एक ही हुए और अंत तक अब किसी दूसरे हुसैन का पैदा होना सम्भव नहीं।

इमाम हुसैन (जैसा कि पहले लिख चुका हूँ) मानव-जगत के सबसे बड़े उपकारी हैं। उन्होंने तेरह सौ वर्ष पूर्व कर्बला में तीन दिन तक बिना पानी पिये तथा दूसरी अनेकानेक विध्न, बाधाओं, अड़चनों, आपत्तियों एवं अत्याचारों का सामना करने के बाद भी यज़ीद की सेना के नायक उमरे साद से यह भी कहा था कि यदि तू मेरी दूसरी शर्त न भी स्वीकार करे तो कम से कम इसकी आज्ञा दे दे कि मैं इराक़ नामक देश छोड़कर भारतवर्ष चला जाऊँ। शायद मुझे अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिस समय इमाम हुसैन ने भारतवर्ष आने की इच्छा प्रकट की थी, उस समय भारत में न कोई मस्जिद बनी थी, न कोई मुसलमान रहता था। मैं नहीं समझता कि इमाम हुसैन ने भारतियों में ऐसी कौन सी विशेषता देखी कि जिससे बाध्य होकर उन्होंने न तो यह कहा कि मुझे चीन जाने दो, न यह कहा कि ईरान की ओर प्रस्थान करने दो, भारतवर्ष को ही क्यों याद किया। मेरा विश्वास है कि वह यह जानते थे कि भारत में मेरे प्रेमी अरब से कहीं अधिक पैदा हो जाएंगे और जैसा उनका विचार था वैसा ही हुआ।

सबसे पहला ताज़िया भारत में सरपर रखकर लाने वाला सम्भवतः तैमूर राजा था परन्तु इस्से पहले भी हिमालय की बहुत सी चोटियों पर हुसैन की पोथी पढ़े

जाने की आवाजें वातावरण में गूँजा करती थीं। मुझे यह नहीं ज्ञात है कि इमाम हुसैन का बखान करने वाले ये लोग किस धर्म के अनुयायी थे, परन्तु एतिहासिक तथ्यों को अस्वीकार करना सम्भव नहीं है, अतएव कहना ही पड़ेगा कि हुसैनी ब्राहम्ण उन पर किये गए अत्याचारों को याद करके अशु-धारा प्रवाहित किया करते थे और आज भी भारत में हुसैनी ब्राहम्णों की कमी नहीं है। केवल ब्राहमाणों ही पर क्या निर्भर है, वह कौन सा हिन्दू है जिसको इमाम हुसैन से लेश-मात्र भी शत्रुता या विरोध हो क्योंकि यदि हिन्दुओं को इमाम हुसैन से (अल्लाह न करे) शत्रुता होती महाराजा ग्वालियर क्यों करोड़ों रुपया ताज़ियादारी के नाम पर लुटाते, महाराजा इन्दौर क्यों लाखों रुपया हुसैन के नाम पर व्यय करते, महाराज जयपुर, महाराजा जोधपुर क्यों बड़े शानदार ताज़िये रखते। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से सहस्त्रों हिन्दू क्यों इमाम हुसैन से श्रद्धा रखते। यह हमें मालूम है कि किसी मुसलमान ने हिन्दुओं से नहीं कहा था कि अज़ादारी (हुसैन के आदर्श बलिदान का वर्णन, ताज़िया रखना आदि) करो, किसी मौलाना साहब ने हिन्दुओं से यह अपील नहीं की थी कि तुम भी हुसैन का वर्णन करने और मोहर्रम मनाने में हमें सहयोग प्रदान करो।

भारत क्योंकि सदा से अपने अतिथि-सत्कार के लिए प्रसिद्ध रहा है और हम भारत निवासी यथा सामर्थ्य अतिथियों का स्वागत करते रहे हैं। अतएव यदि इमाम हुसैन जैसा कि उन्होंने कहा था, भारत-भूमि के पदार्पण करने का अवसर पा जाते, तो हम नहीं कह सकते कि उस समय हिन्दू-जाति उनकी क्या सेवा करती, परन्तु हम लोगों की अज़ादारी और हम लोगों का इमाम हुसैन प्रशंसा में कविताएं कहना एवं लेख लिखना आदि इस बात का प्रमाण है कि इमाम हुसैन के केवल इतना कहने पर कि वह भारतवर्ष आना चाहते थे, यद्यपि अत्याचारियों ने उनको यहाँ आने नहीं दिया, फिर भी हम लोग उनसे इतना प्रेम व श्रद्धा रखते हैं, किन्तु यदि वह आ जाते तो उस समय शायद संसार देख लेता कि कर्बला में इमाम हुसैन का रौज़ा (पवित्र-समाधि) केवल सोने का बना है, परन्तु भारत में उनका रौज़ा (पवित्र-समाधि) सम्भवतः आभूषणों से तैयार किया जाता।

उनके यहाँ न आने के बावजूद भी क्या भारत-भूमि में उनकी पवित्र समाधि (रौज़े) की नक़्लें मौजूद नहीं हैं? क्या उस नक़्शे को सामने रखकर भारत के अनेकों नगरों में कर्बलाएं निमित नहीं करायी गईं? यह कर्बलाएं तो हमारे शिया-भाईयों ने बनवाई हैं और उन्हीं को निर्मित भी कराना चाहिए थीं, परन्तु आप यह न समझ लीजिएगा कि हिन्दुओं ने इमामबाड़े नहीं बनवाए। ग्वालियर में हिन्दू राजा का बनवाया हुआ इमामबाड़ा देखा जा सकता है और लखनऊ में भी ठाकुरगंज का इमाम बाड़ा मेवा राम का बनवाया हुआ है और झाऊलाल ने भी एक इमामबाड़ा बनवाया था, शोक का विषय है कि वह आज मौजूद नहीं। जयपुर नगर की एक-मात्र सुन्दर कर्बला भी एक हिन्दू-सज्जन की ही बनवाई हुई है। राजा टिकैत राय का वक़्फ़ (Waqf) आज तक मौजूद है। बात यहीं तक सीमित नहीं है। हिन्दू-कवियों ने इमाम हुसैन की प्रशंसा में असंख्य कविताएं कहीं हैं। प्राचीन हिन्दू-कवियों ही ने नहीं बल्कि आज के हिन्दू-कवियों (शायरों) ने भी इमाम हुसैन की सेवा में काव्य-श्रद्धांजलि अर्पित करना अपना कर्तव्य समझ लिया है। मैं स्वयं भी इमाम हुसैन की प्रशंसा में कविता रचने में अपना अधिक समय देता हूँ। श्री लालता प्रसाद "शाद" जैसे भाषा-पंडित आज से दो वर्ष पूर्व जीवित थे, और दुनिया जानती है कि उन्होंने इमाम हुसैन और उनके मिशन की जितनी सेवा की, उतनी सम्भवतः अपने धर्म की भी न की होगी। शोक! कि आज वह इस संसार में नहीं हैं परन्तु उनकी याद हर इमाम हुसैन के प्रेमी के हृदय में विद्यमान रहेगी।

यह सब बातें जो आपने उपरोक्त लेख में पढ़ी हैं, इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि इमाम हुसैन केवल मुसलमानों ही के नहीं, बल्कि प्रत्येक उस मनुष्य के हैं, जिसको नीति व प्रेम से सम्बन्ध है। अतः अब तो आप समझ गए होंगे कि जिस प्रकार विश्व का प्रत्येक इमाम हुसैन का प्रेमी कह सकता है कि इमाम हुसैन हमारे हैं, उसकी प्रकार 'माथुर' लखनवी भी यह कह सकता है कि "हमारे हैं हुसैन"।

(इमामिया मिशन प्रकाशन न० 313 मुहर्रम 1373हि०)

मुख्य समाचार

एटमी हथियारों की अद्मे तौसी के बारे में ईरानी क़रारदाद मंजूर

अक़वामे मुत्तहेदा ने ईरान की 8 साला कोशिशों के बाद एटमी हथियारों की तौसी के बारे में ईरान की क़रारदाद को मंजूर कर लिया है। महर ख़बर रसाँ एजेंसी ने अक़वामे मुत्तहेदा की साइट के हवाले से नक़ल किया है कि अक़वामे मुत्तहेदा ने ईरान की 8 साला कोशिशों के बाद एटमी हथियारों की अद्मे तौसी के बारे में ईरान की क़रारदाद को मंजूर कर लिया है। इस क़रारदाद के हक़ में 107 मुमालिक ने वोट दिया जबकि अमरीका, इस्राईल और बाज़ मग़रिबी मुमालिक ने इस क़रारदाद के ख़िलाफ़ वोट दिया। इस क़रारदाद का उनवान एटमी हथियारों के अद्मे तौसी के सिलसिले में 1995, 2000 और 2010 में मुताल्लिक़ा हुकूमतों की जानिब से कुबूलशुदा मुआहेदों पर नज़रसानी है। गुज़श्ता 8 साल में ईरान ने 4 बार इस तजवीज़ को पेश किया और आख़िरकार इस साल अक़वामे मुत्तहेदा ने उसे मंजूर कर लिया है। इस क़रारदाद के मुताबिक़ एटमी हथियार रखने वाले मुमालिक को चाहिए कि वह अपने एटमी हथियारों को नाबूद करने के सिलसिले में ज़रूरी इक़दाम करें और एटमी हथियारों की निगरानी मुकम्मल तौर पर अक़वामे मुत्तहेदा के हवाले कर दें।

डॉ. सै. रज़ा हुसैन नक़वी 'रम्ज़' मरहूम की वफ़ाते हसरत आयात

समाजी व सियासी शख़सियत, मशहूर रईस दीवान नासिर अली की नस्ल के होनहार मज़हबी व अदबी शख़्स डॉ. सै. रज़ा हुसैन अपने वालिद सै. मुलाज़िम हुसैन के घर खजवा ज़िला सीवान में 17 रमज़ान 1342^हि० मंगल मुताबिक़ 22 अप्रैल 1924^ई० को पैदा हुए। इब्तेदाई तालीम अपने वतन में हासिल करकके आगे की तालीम मुज़फ़्फ़रपुर बिहार में हासिल करके एम.बी.बी.एस. की डिग्री पटना मेडिकल कालेज से हासिल की फिर अगस्त 1966^ई० तक बिहार सूबे के सरकारी अस्पतालों में बहैसियत डाक्टर ख़िदमात अंजाम दिए। सितम्बर 1966^ई० में इंग्लैंड तशरीफ़ ले गए नतीजे में ट्रोपिकल मेडिसिन और एक्युपेंक्चर क्लीनिक की शुरुआत नार्थ मान्चेस्टर हास्पिटल (जो मान्चेस्टर युनिवर्सिटी का टीचिंग हास्पिटल भी है) में की जो बाद में एक्युपेंक्चर के एक तालीमी इदारे में तबदील हो गया। 1992^ई० में मौसूफ़ ने अपनी सेहत के मद्देनज़र वक़्त के पहले रिटायरमेन्ट ले लिया और अपनी अहलिया मरहूमा शहर बानो के साथ हज के लिए चले गए। 2002^ई० में मुस्तक़िल तौर से इंग्लैंड से लखनऊ आकर सुकूनत पज़ीर हो गए। अपनी ज़िंदगी का इल्मी, अदबी और मज़हबी सफ़र जारी रखते हुए कुछ महीनों की बीमारी के बाद 31 अक्टूबर 2011^ई० मुताबिक़ 3 ज़िलहिज्जा 1432^हि० मंगल को 11 बजे दिन में इस दुनिया से रुख़सत हो गए। रात 10 बजे मुफ़क्किरे इस्लाम डॉक्टर मौलाना सै० कल्बे सादिक़ साहब की इक़्तेदा में नमाज़े जनाज़ा हुई। जिसके बाद मौलानाए मौसूफ़ ने मजलिसे ईसाले सवाब को ख़िताब फ़रमाया और मौसूफ़ ही की निगरानी में 11 बजे शब में इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब में मरहूम के जस्दे ख़ाकी की तद्फ़ीन हुई। मरहूम ने अपने शोबे के ख़िदमात के अलावा दूसरे दीनी व अदबी ख़िदमात भी अंजाम दिए जिनमें छः अदद मज़हबी व तिब्बी किताबें हैं जो ज़ेवरे तबा से आरास्ता हो चुकी हैं और चंद किताबें अभी मुन्तज़िरे तबाअत व इशाअत हैं। इन इल्मी कामों के अलावा कुछ अमली कारनामे भी हैं मसलन (1) ''ज़ैनबिया'' खजवा बिहार (2) ''रौज़-ए-अब्बास^अ० अलमदार'' खजवा (3) ''दर्सगाहे मासूमा'' भीकपुर बिहार और (4) ''दफ़्तरे इदार-ए-इस्लाह'' को नए सिरे से तामीर कराया साथ ही इमामबाड़ा दीवान नासिर अली खजवा, मस्जिद व इमामबाड़ा दीवान नासिर अली लखनऊ की तजदीद बसूरते तरमीम कराया साथ ही एक बात और भी लायक़े ज़िक्र है कि 22-23 नवम्बर 1998^ई० को ''ज़ैनब-डे'' और इदार-ए-इस्लाह का सोला साला प्रोग्राम बड़े पैमाने पर खजवा बिहार में जिसमें मुल्क के बहुत से आलिमों और शायरों ने शिरकत की।

मजलिसे ईसाले सवाब

(1) मजलिसे सोएम 3 नवम्बर 2011^ई० को इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब में 9 बजे सुबह मुनअक़िद हुई जिसे डाक्टर मौलाना सै० कल्बे सादिक़ साहब क़िब्ला नाएब सदर मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने ख़िताब फ़रमाई।

(2) मजलिसे चहेल्लुम सनीचर 19 नवम्बर 2011 को 10 बजे सुबह इमामबाड़ा ग़ुफ़रानमआब में होगी जिसे जनरल सेक्रेट्री मजलिसे उलम-ए-हिन्द मौलाना सै० कल्बे जवाद नक़वी साहब क़िब्ला ख़िताब फ़रमाएंगे। मोमिनीने केराम से मजलिस में शिरकत की गुज़ारिश है।

इदारा मरहूम के पसमांदगान खुसूसन इंजीनियर सै० आले रज़ा (जो Director Corporate Relation की हैसियत से कई इंजीनियरिंग कालेजों में ख़िदमात अंजाम दे रहे हैं) और डॉक्टर सै० अमानत हुसैन नक़वी (सदर आल इंडिया अली कांग्रेस) को ताज़ियत पेश करता है और मोमिनीन से फ़ातेहा-ख़्वानी की दरख़्वास्त करता है।

फ़िलिस्तीन को युनेस्को की रुकनियत मिल गई

अमरीका और इस्राईल की मुख़ालेफ़त के बावजूद 173 के मुक़ाबले 107 मुमालिक की हिमायत

फ्रांस में अक़वामे मुत्तहेदा के इदारे बराए तालीम, साइंस और सक़ाफ़त यानी युनेस्को ने फ़िलिस्तीन की जानिब से दायर की जाने वाली मुकम्मल रुकनियत की दरख़्वास्त कसरते रायसे मंज़ूर कर ली है। वोटिंग के दौरान फ़िलिस्तीन के हक़ में एक सौ सात और मुख़ालेफ़त में चौदह वोट आए जबकि बरतानिया समेत बावन मुमालिक ने रायशुमारी में हिस्सा नहीं लिया। अब अक़वामे मुत्तहेदा फ़िलिस्तीनी दरख़्वास्त पर ग़ौर शुरु करेगा। फ़िलिस्तीन की रुकनियत के दरख़्वास्त दायर मुताल्लिक़ा उनवानाते दुनियाए मश्रिक़े वुस्ता बरतानिया के युनेस्को में मंदूब ने कहा कि फ़िलिस्तीनी अवाम की ख़्वाहिशह है कि मुज़ाकेरात के अमल को तेज़ी से आगे बढ़ाया जाए और बरतानिया भी यही चाहता है। उन्होंने कहा कि ख़ित्ते में अमन के लिए दो रियासतों का क़याम ज़रूरी है मगर इसके लिए यह जगह मुनासिब नहीं है इसलिए हम उस पर की जाने वाली राय शुमारी में हिस्सा नहीं ले रहे हैं। अपना रद्दे अमल ज़ाहिर करते हुए युनेस्को में अमरीका के मंदूब डेविड क्लोन ने कहा कि फ़िलिस्तीन की रुकनियत का मामला अभी नापुख़्ता है। फ़िलिस्तीनी रियासत की जानिब जाने वाला रास्ता सिर्फ़ एक है और वह बातचीत का रास्ता है।

इसके लिए कोई दूसरा मुख़्तसर रास्ता नहीं इख़्तियार करना चाहिए। और हम समझते हैं जो आज हम ने देखा है उस से इस अमल को नुक़सान पहुँचेगा। इस से हमारी युनेस्को की मदद करने की सलाहियत भी मुतास्सिर होगी, फ़िलिस्तीन के अपने काज़ की तश्हीर के दूसरे ज़राए भी हो सकते थे, अमरीका और इस्राईल ने युनेस्को में फ़िलिस्तीन को रुकनियत देने की मुख़ालेफ़त की थी और अमरीका ने यह भी कहा था कि अगर फ़िलिस्तीन को रुकनियत दी गई तो वह युनेस्को को सालाना दी जाने वाली इमदाद में कटौती कर देगा। युनेस्को के कुल बजट का बीस फ़ीसद यानी सात करोड़ डालर अमरीका देता है। फ़िलिस्तीन की तरफ़ से युनेस्को का रुक्न बनने के दरख़्वास्त को उसकी बतौर रियासत अक़वामे मुत्तहेदा की मुकम्मल रुकनियत पर सलामती कोंसिल में होने वाली वोटिंग के तनाज़ुर में देखा जा रहा है। आलमी रहनुमाओं का ख़याल है कि यह फ़िलिस्तीन की जानिब से आलमी पहचान बनाने और इस्राईल पर दबाव डालने की कोशिश है। फ़िलिस्तीन की जानिब से युनेस्को की रुक्नियत हासिल करने की कोशिश फ़िलिस्तीनी सदर महमूद अब्बास की जानिब से उनके मुल्क को अक़वामे मुत्तहेदा का मुकम्मल रुक्न बनाने के मुतालबे के एक माह बाद की गई है।

अक़वामे मुत्तहेदा की सलामती कोंसिल के अरकान फ़िलिस्तीनी सदर की इस दरख़्वास्त पर इस माह में वोट डालेंगे जबकि अमरीका का कहना है कि वह इस दरख़्वास्त को वीटो कर देगा।

इस्लामी जमहूरिया ईरान, मुत्तहेद, मज़बूत और बासिबात इराक़ की हिमायत करता है

रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी हज़रत आयतुल्लाहिल उज़्मा सै० अली ख़ामेना-ई ने इराक़ के सूबे कुर्दिस्तान के सरबराह जनाब मसूद बारज़ानी के साथ मुलाक़ात में फ़रमाया, इराक़ के तमाम अक़वाम की अमरीका के मुक़ाबले में इस्तेक़ामत ने इराक़ी तारीख़ में सुनहरा बाब रक़म किया है। रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी हज़रत आयतुल्लाहिल उज़्मा सै० अली ख़ामेना-ई ने इतवार को इराक़ के सूबे कुर्दिस्तान के सरबराह जनाब मसूद बारज़ानी के साथ मुलाक़ात में इराक़ के मौजूदा इस्तेक़लाल, सिबात और इस्तेक़ामत की जानिब इशारा करते हुए फ़रमाया, अमरीका के दबाव, अमरीकी फ़ौजियों के अदालती तहफ़्फ़ुज़ की मुख़ालेफ़त और इराक़ से अमरीका फ़ौजियों के इन्ख़ेला के बारे में तमाम इराक़ियों के इसरार और तमाम इराक़ी मज़ाहिब व अक़वाम की मुत्तहेदा इस्तेक़ामत ने इराक़ की तारीख़ में सुनहरा बाब रक़म किया है। रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी ने फ़रमायाः इराक़ में अमरीका की फ़ौजी व सियासी मौजूदगी और दबाव के बावजूद तमाम इराक़ी कुरदों, अरबों, शियों और सुन्नियों ने अमरीका को कुछ न कहा और यह मौज़ू बहुत ही अहम है। रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी ने इराक़ के मुख़तलिफ़ मज़ाहिब व अक़वाम के पुरअम्न और मुसालमत आमेज़ ज़िंदगी बसर करने पर मसर्रत व ख़ुशी का इज़हार करते हुए फ़रमायाः इस्लामी जमहूरिया ईरान को इराक़ में अमन व सेबात के क़याम और इराक़ के मौजूदा शराएत पर बहुत ज़्यादा ख़ुशी और मसर्रत है और इराक़ के तमाम मज़ाहिब और अक़वाम को चाहिए कि एक-दूसरे के हाथ में हाथ देकर और बाहमी इत्तेहाद व यकजहती के साथ नए इराक़ की तामीर व तरक़्क़ी से सिलसिले में तलाश व कोशिश करें। रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी ने ताकीद करते हुए फ़रमायाः इस्लामी जमहूरिया ईरान बासेबात और मुत्तहेद इराक़ की हिमायत करेगा और इराक़ में पैदा होने वाली तबाही और ख़राबी को सुरअत के साथ तामीर व तरमीम करना ज़रूरी है ताकि मुत्तहेद इराक़ अपने हक़ीक़ी मक़ाम तक पहुँच सके। रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी हज़रत आयतुल्लाहिल उज़्मा सै० अली ख़ामेना-ई ने इराक़ में मौजूद तमाम अक़वाम व मज़ाहिब के मानने वालों को ईरान का क़रीबी भाई और ईरानी अवाम के साथ उनके देरीना तारीख़ी रवाबित की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमायाः ईरान और इराक़ के बाहमी रवाबित इस वक़्त अच्छी और मतलूब सतह पर हैं लेकिन रोज़बरोज़ उनमें तौसी की ज़रूरत है। इराक़ के कुर्दिस्तान इलाक़े के सरबराह जनाब मसूद बारज़ानी ने रहबरे मोअज़्ज़म इंक़ेलाबे इस्लामी के साथ मुलाक़ात पर ख़ुशी का इज़हार किया और ईरान को इराक़ी अवाम का क़रीबी दोस्त और भाई क़रार देते हुए कहाः

हम सख़्त व दुश्वार अय्याम में ईरानी अवाम और इस्लामी जमहूरिया ईरान की मदद को कभी भी फ़रामोश नहीं करेंगे। बारज़ानी ने ताकीद करते हुए कहाः तमाम इराक़ी मज़ाहिब व अक़वाम को इस अज़ीम कामयाबी की हिफ़ाज़त के सिलसिले में तलाश और कोशिश करनी चाहिए और यक़ीनी तौर पर हमेशा हमें ईरान के मश्वरे और रहनुमाई की ज़रूरत रहेगी।